RNI No. : UPHIN-2009/29369

डाक पंजीकरण : MISC/CPM/01/KPHO/2019-21
प्रधान डाकघर कानपुर-डाक प्रेषण दिनांक 29/30

वार्षिक सदस्यता शुल्क 100/-

द्रविड़ भारत

www.dbindia.org.in

सामाजिक परिवर्तन का मासिक पत्र

नवम्बर-2020 | वर्ष - 12 | अंक : 10 | मूल्य : 5/-

सम्पादकीय

RNI No. : UPHIN-2009/29369

संपादक : उमेश्वरी देवी, मो.: 9005204074
संरक्षक मण्डल : मा. रामदीन अहिरवार (महोबा), मा. राम अवतार चौधरी (इं. जल संस्थान), मा. छविलाल वर्मा (चरखारी), मा. हरिनाथ राम (दिल्ली), मनीष कुमार मो. 9415053621
राज्य ब्यूरो प्रमुख उत्तर प्रदेश : सुनीता धीमान, 414/12, शास्त्री नगर, कानपुर (उ.प्र.), मो. : 9450871741
क्षेत्रीय सम्पादकीय कार्यालय :
40/69, डी-5, श्यामलाल का हाता, परेड, कानपुर (उ.प्र.), मो. : 8756157631
ब्यूरो प्रमुख कानपुर मण्डल :
पुष्पेन्द्र गौतम, मल्हौसी, औरेया, उ.प्र. मो.: 9456207206
हरियाणा राज्य :
डा. रमेश रंगा, ग्राम-सराय, औरंगाबाद, पो.-बहादुरगढ़,जिला-झज्जर (हरियाणा),09416347052
कानूनी सलाहकार : एड. रामप्रकाश अहिरवार, एड. यू.के. यादव, मोती लाल वर्मा, एड. विजय बहादुर सिंह राजपूत, एड. रमाकान्त धुरिया, रामऔतार वर्मा, एड. सुशील कुमार, कानपुर
मध्य प्रदेश राज्य : पुष्पेन्द्र कुमार
कार्यालय : ग्रा. व पो.-रामटौरिया, जिला-छतरपुर
छत्तीसगढ़ राज्य :
दिलीप कुमार कोसले, मो. : 09424168170
दिल्ली प्रदेश : C/o अनिल कुमार कनौजिया C-260, हर्ष विहार, हरिनगर एक्सटेंशन पार्ट-III, बदरपुर, नई दिल्ली-44, मो. : 09540552317
राजस्थान राज्य : रघुनाथ बौद्ध, श्याम रघु फुट वियर, दुकान नं.-1, गणेश मार्केट, पुलिस चौकी के सामने, अलवर, जिला-अलवर-301001, मो. : 09887512360, 0144-3201516
चिरंजीलाल बैरवा (व्यावस्थापक) मेहरा आदर्श विद्या मन्दिर, भीम नगर कालोनी, राज भट्टा, दिल्ली रोड, अलवर, जिला-अलवर, मो.-09829855349
बाबूलाल बौद्ध, अलवर, मो.-08058198233
संपादकीय/विज्ञापन प्रसार/पंजीकृत कार्यालय :
ग्रा व पो.-रिवई (सुनैचा), जिला-महोबा (उ.प्र.)
मो. : 9005204074, 8756157631
E-mail : dravinbharat1@gmail.com
प्रकाशक, मुद्रक एवं स्वामी
उमेश्वरी देवी द्वारा ग्रा. व पो.-रिवई (सुनैचा), जिला महोबा से प्रकाशित व श्रेय ऑफसेट प्रा. लि., 109/406, नेहरू नगर, कानपुर, 84/1, बी, फजलगंज, कानपुर से मुद्रित

प्रकाशित पत्रिका में प्रकाशित लेख, सामग्री, में संपादक की सहमति अनिवार्य नहीं है। इसमें किसी भी प्रकार का दावा या विचार मान्य नहीं होगा। लेख के विवादित होने पर लेखक ही उत्तरदायी होगा समस्त विवादों का निपटारा महोबा न्यायालय में होगा पत्रिका का संपादन एवं संचालन पूर्णतयः अवैतनिक एवं अव्यवसायिक है।

मिशन को बढ़ाने के लिए सहयोग करें -
भारतीय स्टेट बैंक, शाखा-नवीन मार्केट, कानपुर
खाता सं.-33496621020 • IFSC CODE-SBIN005307

दीपावली

बाबा साहेब के अनुसार -''दीवाली का त्योहार लक्ष्मी पूजन का त्योहार है। 22 प्रतिज्ञाओं के पालकों का लक्ष्मी से कोई लेना देना नहीं है। वर्तमान में मनाए जाने वाला दीवाली का त्योहार बौद्धों का त्योहार कैसे हो सकता है ? इसे अपनाने के लिए हमें इसकी गहराई (मूलस्त्रोत) तक जाना होगा।''

दीपाली से सम्बधित इस विमर्श के बाद अब हम उन तथ्यों पर विचार करेगें, जो हमें दीपावली के मूल स्त्रोत तक ले जा सकते है। ग्रंथों की प्रमाणिकता के आधार पर यह स्वीकार करने में कोई परहेज नहीं है कि जिस दीवाली को हमारे देश के लोग इतनी धूम-धाम से मनाते है। उसकी शुरूआत महान बौद्ध सम्राट अशोक के द्वारा की गई। इस ऐतिहासिक तथ्य की पुष्टि प्रसिद्ध चित्रकार एवं महान बौद्ध चिंतक बौद्धाचार्य शान्ति स्वरूप बौद्ध के द्वारा लिखित बौद्धाचार्य-प्रकाश तथा प्रसिद्ध बौद्ध विद्वान मधुकर पिपलायन द्वारा लिखित 'महान अशोक' नामक प्रसिद्ध ग्रन्थ से भी होती है। जिसका विस्तृत हमें महान बौद्ध गंथ महावंश से प्राप्त है-

सिद्धार्थ गौतम को पैतीस वर्ष की आयु में बुद्धत्व प्राप्त हुआ और वे बुद्ध हो गए। भगवान बुद्ध बुद्धत्व लाभ होने के बाद से 45 वर्ष तक मानव कल्याण हेतु उपदेश करते रहे और उन्हें 80 वर्ष की आयु में महापरिनिर्वाण प्राप्त हुआ। उनका दिया हुआ बौद्ध धर्म विकास की गति कम न हुई।

बौद्ध धम्म के प्रति सम्राट अशोक की असीम श्रद्धा थी। धम्म शिक्षा लेने के बाद उसने निश्चय किया कि संसार के सभी प्राणी सुखी रहें। इसलिए उसने प्राणी मात्र के कल्याण के उद्देश्य से ही अपना संपूर्ण जीवन बौद्ध धम्म की सेवा में समर्पित करने की प्रतिज्ञा की और एक दिन उसने महाथेर मोग्गलिपुत्त-तिस्स से पूछा-

'भन्ते धम्म के कितने स्कंध हैं ?

महाथेर ने समझाते हुए कहा-'तीनों पिटकों, पांचों निकायों और नौ अंगो में 84000 (चौरासी हजार) धम्म स्कन्ध हैं। अर्थात् भगवान बुद्ध ने अपने जीवन के 45 वर्षो में 84000 उपदेशों की घूम-घूमकर मानव कल्याण हेतु देशना की है। यह सुनकर महाराजा अशोक ने प्रण किया कि मै 84000 धम्म स्कंधों की स्मृति में उतने ही प्रतीकों का निर्माण करवाऊगां और उनकी वदंना करूंगा।

इसी संकल्प की स्थापना के लिए सम्राट अशोक ने अपने पूरे साम्राज्य के विभिन्न नगरों में, भगवान बुद्ध के जीवन से सम्बन्धित प्रत्येक स्थान पर स्तूप, शिलालेख, धम्म स्तम्भ और संघारामों का निर्माण करवाया। जब निश्चित समयाविधि में इन धम्म स्कंधों (स्मारकों) के बनकर तैयार हो जाने का समाचार सम्राट अशोक को पाटलिपुत्र में प्राप्त हुआ तो उन्होनें चौरासी हजार चैत्य, स्तूपों, विहारों, स्तम्भों, शिलालेखों आदि का उद्घाटनोत्सव कार्तिक मास के अमावस्या वाले दिन अपनी राजधानी पाटलिपुत्र से ही किया था। इस मंगल अवसर पर पूरे देश भर में दीपमालाएं प्रज्ज्वलित कर तथा पुष्प मालाएं सुसज्जित कर हर्षोल्लास और धूम-धाम के साथ दीपदान महोत्सव मनाया गया। इसी ऐतिहासिक घटना के पश्चात बौद्ध धर्मावलम्यिों द्वारा दीपदानोत्सव यानी दीपावली का त्योहार बहुत हर्षोल्लास और उत्साह के साथ मनाया जाने लगा।

अनागारिक धम्मपाल के अनुसार सम्राट अशोक ने ई. पू.267 से 265 के बीच कुल 16 करोड़ स्वर्ण मुद्राएं खर्च करके जो 84 हजार चैत्य और उतने ही विहार बनवाये थे, उन्हें ई. पू. 265 में विशाल धम्म महोत्सव का आयोजन कर जनता से बौद्ध धम्म पालन की प्रतिज्ञा लेकर धम्म की सेवा में दान कर दिए थे। बौद्धकालीन इतिहास काल में प्रतिवर्ष यह दिन राष्ट्रीय अवकाश रहता था। सम्राट सेना का अवलोकन करता था। और सेना उसे सलामी देती थी। सम्राट जरूरतमंदों, दुखी-पीडित जनता और बौद्ध भिक्खुओं को मुक्त हस्त से दान देता था। यह परम्परा सभी बौद्ध सम्राटों ने अक्षुण्ण बनाए रखी थीं।

दीवाली अमावस्या को ही क्यों?

यहां पर स्वतः एक प्रश्न उभर कर सामनें आता है कि जब भगवान बुद्ध के जीवन में सभी कार्य पूर्णिमा को हुए और बौद्धों के लिए पूर्णिमाओं का बहुत महत्व है तो फिर सम्राट अशोक ने उन चौरासी हजार बौद्ध स्मारको का उद्घाटन अमावस्या को ही क्यों किया ? इस महत्वपूर्ण प्रश्न का उत्तर भी एक महत्वपूर्ण एवं दुखद ऐतिहासिक घटना से सम्बध रखता है। वह कार्तिक अमावस्या का ही दिन था जिस दिन भगवान बुद्ध के प्रिय और महान शिष्य ही नहीं बल्कि भगवान का बायां हाथ कहे जाने वाले वरिष्ठ भिक्खु महामोग्गल्लान की षडंयंत्रपूर्ण हत्या कर दी गई थी। उन दिनों चारों ओर

भगवान के धम्म का प्रभाव बडी ही तीव्र गति से बढने लगा था और लोग अन्धश्रद्धा को छोडकर बुद्धिवादी मार्ग अपनाने लगे थे। इससे ब्राहाणों का वर्चस्व खतरे में पड गया, उनकी आवभगत में कमी आने लगी और उनका मान–सम्मान कम होने लगा। इसलिए उन्होने ईर्ष्या वश तरह–तरह से भगवान बुद्ध का विरोध करने, बदनाम करने और धम्म को खत्म करने का षडयंत्र करना शुरू कर दिया। इसी विरोध की एक कडी में बुद्ध के विरोधियों ने तैर्थिकों के साथ मिलकर भिक्खुसंघ के धम्म–सेनापति पूज्य भिक्खु महामोग्गल्लान महाथेर को लाठी डण्डों से पीट–पीट कर मार डाला। अपने इस षडयंत्र की सफलता के कारण ब्राहाणों ने खूब खुशी मनाई किन्तु बौद्ध और मूलनिवासियों में मातम छा गया। अमावस्या की यह काली रात बौद्धों के मातम (शोक) का प्रतीक बन गई थी।

एक बौद्ध सम्राट होने के नाते बौद्ध संघ के साथ ब्राहाणो द्वारा किए गए इस अन्याय और कूरता का अनुभव सम्राट को अच्छी तरह हो चुका था। मुझे लगता है कि महामोगल्लान की मुत्यु का उन्हें उतना दुख नही था। जितना कि दुख, मोगल्लान महाथेर की मृत्यु पर खुशी मनाते हुए ब्राहाणों को देखकर होता रहा होगा। इसलिए सम्राट अशोक ने मोग्गल्लान महाथेर की मृत्यु के दुख को कम करने के लिए तथा ब्राहाणों की खुशी का मुंहतोड जवाब देने और अपने सम्पूर्ण राज्य में भगवान बुद्ध के धम्म को स्थापित करने के उद्देश्य से ही सम्राट अशोक ने अपने द्वारा बनवाए गए 84000 धम्म स्माराकों का उद्घाटन कार्तिक अमावस्या की काली रात में असंख्य दीप जलाकर किया। यह उद्घाटनोत्सव पाटलि–पुत्र में किया गया था इसलिए यह धम्म के प्रकाश का प्रतीक उत्सव भी है।

सम्राट अशोक ने मोग्गल्लान महाथेर की मृत्यु के दुख को कम करने के लिए तथा ब्राहाणों की खुशी का मुंहतोड जवाब देने और अपने सम्पूर्ण राज्य में भगवान बुद्ध के धम्म को स्थापित करने के उद्देश्य से ही सम्राट अशोक ने अपने द्वारा बनवाए गए 84000 धम्म स्माराकों का उद्घाटन कार्तिक अमावस्या की काली रात में असंख्य दीप जलाकर किया। यह उद्घाटनोत्सव पाटलि–पुत्र में किया गया था इसलिए यह धम्म के प्रकाश का प्रतीक उत्सव भी है।

पूज्य भन्ते महामोग्गल्लान और सारिपुत्र की अस्थियां सम्राट अशोक ने सांची के ऐतिहासिक स्तूपों में सुरक्षित रखी थी। दीपावली नवम्बर माह में आती है, इसलिए प्रतिवर्ष नवम्बर माह के अतिंम रविवार को सांची स्थित (बुद्ध) स्तूप में यह अस्थियां दर्शनार्थ रखी जाती है। इस अवसर पर वहां विशाल मेला लगता है। सांस्कृतिक–धार्मिक कार्यक्रम प्रस्तुत किये जाते हैं। देश–विदेश के लाखों बौद्ध भिक्खु व उपासक गण वहां पहुंचते है। बौद्धो को सांची जाकर उन महापुरूषों की अस्थियों के दर्शन अवश्य करने चाहिए। उनके धम्म को समर्पित जीवन से प्रेरणा लेनी चाहिए और अपने इन्हीं ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर ही दीपावली मनानी चाहिए।

इस दिन हमें अपनी क्षमता के अनुसार दीये, मोमबत्तियाँ जलाकर तथा प्रकाश के आधुनिक साधनों से अपने घरों तथा धम्मस्थलों पर खूब प्रकाश करना चाहिए। गृह प्रवेश, मूर्ति स्थापना तथा उद्घाटन का कोई भी शुभ कार्य हमें इसी दिन सम्पन्न करना चाहिए केवल दीप जलाने का कार्य रात को होना चाहिए क्योकि रात में हिन्दूवादी व्यवस्था के तहत बडी मात्रा में गोले–पटाखें छोडें जाते हैं। जिससे धम्म प्रवचन सुनने–सुनाने में व्यवधान हो सकता है। इसके अतिरिक्त बौद्धो के द्वारा मनाया जाने वाला यह त्योहार हिन्दुओं से बिल्कुल अलग दिखना चाहिए। इसके लिए बौद्धो को अपनी तैयारियां दूर से ही दिखने लायक साज–सज्जा बौद्ध परंपरा के अनूरूप होना आवश्यक है। उपयुक्त सुझाव यह है कि अधिक से अधिक पंचशील झण्डे और झंडियों का उपयोग अपने घर तथा उत्सव स्थल को सजाने के लिए करना चाहिए। जिस प्रकार हिन्दू लोग लक्ष्मी और गणेश की पूजा करते है उसी तरह प्रत्येक बौद्ध के घर में भगवान बुद्ध बाबाहेब और सम्राट अशोक की प्रतिमायें अथवा तस्वीरें सजानी चाहिए और विधिपूर्वक वन्दना करनी चाहिए, पुष्प अर्पित करने चाहिए तथा भगवान बुद्ध, बाबासाहेब और सम्राट अशोक के द्वारा दिए गए धम्म की सम्यक ज्योति से मानव जीवन के दुखद अन्धकार को खत्म करने का संकल्प व प्रत्यन करना चाहिए।

साभार – त्योहारों के रहस्य
– रोशन बौद्ध

निरीक्षण तथा संतुलन के उपायों की आवश्यकता

अंग्रेजों ने भारत पर 150 वर्षों तक राज किया, पर उन्होंने कभी यह नहीं सोचा कि भाषाचार राज्य बनाए जाएं, जबकि उस समय भी यह समस्या थी। बहुभाषी क्षेत्रों की सांस्कृतिक लालसा जानकर उस पर अमल करने की अपेक्षा उनकी अधिक रूचि केवल इस बात में थी कि प्रशासन स्थायी हो और पूरे देश में कानून और व्यवस्था बनी रहे। यह सही है कि उनके राज के अंतिम दिनों में उन्होंने भी यह महसूस किया कि उन्होंने जो प्राशसनिक व्यवस्था कायम की है, उसमें भाषाओं के लिहाज से भी कुछ ताल–मेल होना आवश्यक है, कम से कम उन क्षेत्रों में तो किया जाना ही चाहिए, जहां भाषाओं की भिन्नता होने से उनमें परस्पर कशमकश दिखाई पड़ती है। इसलिए शायद भारत छोड़कर जाने से पहले उन्होंने बंगाल, बिहार और उड़ीसा जैसे भाषा पर आधारित राज्य बना दिए। मान लो, यदि वे हमें छोड़कर न जाते और हम पर राज करते ही रहते तो वे अन्य क्षेत्रों को भी तार्किक दृष्टि से भाषावार राज्यों के रूप में पुनर्गठित करते।

अंग्रेजों ने भाषावार प्रांतों के निर्माण की बात सोची, इसके बहुत पहले ही श्री गांधी के नेतृत्व में कांग्रेस ने सन् 1920 में अपना जो संविधान बनाया, वह भाषावार प्रांतों पर आधारित था। इस प्रकार का संविधान बनाने के पीछे जो विचारधारा रही, वह उनकी स्थायी विचारधारा थी या लोगों को कांग्रेस की ओर आकृष्ट करने के लिए सोचा गया तात्कालिक प्रलोभन मात्र था, इसके बारे में अब अटकलें लगाना उचित नहीं होगा। पर हां, इस बात में तो संदेह नहीं है कि देर से सही पर अंग्रेजों को यह समझ में आ गया था कि भाषायी आधार को भी ध्यान में रखा जाना चाहिए और इसलिए उन्होंने इसे सीमित मात्रा में सही, पर कार्यरूप में परिणत तो किया ही।

विरोध

सन् 1945 तक तो कांग्रेस ने उस समस्या की ओर ध्यान नहीं दिया, जो 1920 में बने संविधान के अनुसार उसने स्वयं पैदा की थी। सन् 1945 में जब कांग्रेस के हाथ में शासन की बागडोर आई, तब इस जिम्मेदारी को निभाने का बोझ उस पर आ पड़ा। भाषावार प्रांतों के गठन के हाल ही के इतिहास पर नजर डालने से यह पता चलता है कि उस मामले की भाषावार प्रांतों के निर्माण का प्रस्ताव रखकर एक संसद–सदस्य ने पहल की। सरकार की ओर से बहस का उत्तर देने की जिम्मेदारी मेरी थी। वरिष्ठ सत्ताधारियों की राय जानने के लिए मैंने उनसे विचार–विमर्श किया। यह बात विचित्र लग सकती है, किंतु मुझे साफ पता चल गया कि हाइकमान भाषावार प्रांतों के निर्माण के कतई खिलाफ है। इन परिस्थितियों में यही ठीक समझा गया कि बहस का उत्तर यदि प्रधानमंत्री स्वयं दें तो ठीक रहेगा। बहस का उत्तर देते हुए प्रधानमंत्री ने सदन को यह आश्वासन दिया कि जल्दी ही आंध्र राज्य का गठन किया जाएगा। प्रधानमंत्री के इस आश्वासन के फलस्वरूप प्रस्ताव वापस ले लिया गया। फिर मामला वहीं शांत हो गया।

दूसरी बार

संविधान प्रारूप समिति के अध्यक्ष के नाते मुझे दूसरी बार इस समस्या का सामना करना पड़ा। जब संविधान का प्रारूप तैयार हो चुका तो मैंने प्रधानमंत्री को पत्र लिखकर पूछा कि प्रस्ताव पर हुई बहस के उत्तर में उन्होंने सदन को जो आश्वासन दिया था, उसको ध्यान में रखते हुए क्या मैं संविधान में ''क'' वर्ग के राज्यों में आंध्र को एक अलग राज्य के रूप में सम्मिलित कर दूं। उनका क्या उत्तर आया था, इसके बारे में और क्या हुआ, इसकी न तो मुझे याद है और न ही मेरे पास इस समय उसका कोई प्रमाण उपलब्ध है। किंतु मैं इतना अवश्य जानता हूं कि तब संविधान सभा के सभापति डा. राजेन्द्र प्रसाद ने यू.पी. के एक वकील श्री धर की अध्यक्षता में भाषावार प्रांतों के गठन पर विचार करने के लिए एक समिति बना दी।

यह धर समिति किसी और बात के लिए नहीं तो कम से कम एक बात के लिए तो अवश्य ही याद की जाती रहेगी। समिति ने यह कहा था कि भाषा के आधार पर चाहे महाराष्ट्र को एक अलग राज्य का दर्जा दिया जाए, किंतु बंबई को किसी भी हालत में महाराष्ट्र में सम्मिलित नहीं किया जाए। कांग्रेस के जयपुर अधिवेशन में उस रिपोर्ट (प्रतिवेदन) पर विचार हुआ। जयपुर कांग्रेस ने तीन सदस्यों की एक समिति बनाई, जिसमें प्रधानमंत्री, श्री वल्लभभाई पटेल और डा. पट्टाभि सीतारमैया थे। उन्होंने जो रिपोर्ट दी, उसका सार यह है कि आंध्र प्रांत का अविलंब गठन किया जाए, किंतु मद्रास शहर तमिलों के पास ही रहे। ब्यौरेवार बातें तय करने के लिए एक अन्य समिति बनाई गई, उसने भी कमोवेश सर्वसम्मति से

रिपोर्ट दी। श्री प्रकाशम सहित आंध्र के अनेक सदस्यों ने इस रिपोर्ट का विरोध किया। वे लोग किसी भी हालत में मद्रास पर अपने दावे को छोड़ने के लिए तैयार नहीं थे। इस तरह इस मामले पर निर्णय नहीं किया जा सका।

इसके बाद श्री पोट्टी श्रीरामुलु वाली दुर्घटना हुई। श्रीरामुलु ने आंध्र प्रांत के लिए आत्मोत्सर्ग किया। शासक दल के कामकाज पर यह शर्मनाक टिप्पणी ही मानी जाएगी कि एक ऐसे काम के लिए श्रीरामुलु को अपनी जान से हाथ धोना पड़ा, जिसकी वैधता को कांग्रेस मान चुकी थी। अब जिस नए आंध्र प्रांत के निर्माण की बात मानी जा चुकी थी, उसे स्वर्गवासी श्रीरामुलु की आत्मा के लिए प्रधानमंत्री द्वारा किया गया पिंडदान ही मानना होगा। क्या किसी अन्य देश में सरकार के इस तरह के काम को सहन किया जा सकता था? अब इसके बारे में बहस से क्या फायदा?

मेरी राय में किसी भी भाषावार राज्य के अस्तित्व में आने से पहले तीन शर्तें पूरी होनी चाहिएं। पहली शर्त यह है कि वह राज्य आर्थिक दृष्टि से आत्म–निर्भर हो। संविधान बनाते समय देसी रियासतों के विलय के प्रश्न पर जब विचार किया गया तो इस नियम को नितांत अनिवार्य माना गया था। केवल उन्हीं देसी रियासतों को स्वतंत्र राज्यों का दर्जा दिया गया, जो आर्थिक दृष्टि से आत्म–निर्भर थीं। शेष सभी को पड़ोसी राज्यों में मिला दिया गया।

सहारा जैसी स्थिति

क्या प्रस्तावित आंध्र राज्य आर्थिक दृष्टि से आत्म–निर्भर है? न्यायमूर्ति श्री वांचु ने स्पष्ट रूप से यह माना था कि आंध्र राज्य का वार्षिक राजस्व–घाटा पांच करोड़ रू. होगा। क्या इस घाटे को कम करने के लिए आंध्र राज्य या तो नए कर लगाएगा या अपना खर्च कम करेगा? आंध्रवासियों पर ही इसका असर होगा। क्या इस घाटे की पूर्ति की जिम्मेदारी केन्द्र अपने ऊपर लेगा? यदि हां, तो क्या यह जिम्मेदारी केवल प्रस्तावित आंध्र राज्य तक ही सीमित रहेगी या केन्द्र ऐसे ही अन्य मामलों में भी जिम्मेदारी उठाएगा? इन प्रश्नों का जवाब मिलना चाहिए।

नए आंध्र राज्य की राजधानी नियत नहीं की गई है। प्रसंगवश मैं कहना चाहूंगा कि मैंने यह कभी नहीं सुना कि कोई नया राज्य बना हो और यह तय नहीं हुआ हो कि उसकी राजधानी क्या होगी। श्री राजगोपालाचारी जो पक्के तमिल हैं, आंध्र राज्य की सरकार के प्रति इतना शिष्टाचार नहीं बरतेंगे कि उसे एक रात के लिए ही सही मद्रास शहर में टिकने दें, जैसा कि हिन्दू धर्म सभी हिन्दुओं को अपने अतिथियों के प्रति अपनाने की शिक्षा देता है। नई सरकार को अपना आवास स्वयं ढूंढना होगा और सरकार चलाने के लिए पैसा कहां से आएगा? आंध्र तो सहारा के रेगिस्तान जैसा है, जहां कोई नखलिस्तान भी नहीं है। यदि उसकी सरकार इस सहारा में तत्कालिक शरण लेती है, तब भी आगे चलकर उसे किसी अधिक स्वास्थ्यप्रद स्थान में अपना जमा ले जाना ही होगा। इस तरह इस अस्थायी मुख्यालय पर अनावश्यक खर्च करना होगा। क्या सरकार ने समस्या के इस पहलू पर भी विचार किया है? अभी से क्यों न उन्हें ऐसा स्थान आवंटित कर दिया जाए, जहां स्थायी तौर पर राजधानी रखने की संभावनाएं अधिक नजर आती हों।

मेरी दृष्टि में राजधानी के लिए वारंगल सर्वाधिक उचित स्थान है। वह आंध्र की पुरानी राजधानी रहा है। यहां रेलवे जंक्शन है। यहां पर्याप्त संख्या में भवन भी उपलब्ध हैं। यह सही है कि यह शहर आंध्र के इस इलाके में स्थित है, जो हैदराबाद रियासत का हिस्सा है। सैद्धांतिक दृष्टि से तो यह होना चाहिए था कि विशालकाय और अष्टावक्र जैसे आकार वाली हैदराबाद रियासत का विभाजन किया जाता और अलग से एक पूर्ण आंध्र राज्य बनाया जाता। किंतु यदि प्रधानमंत्री को इस प्रस्ताव पर अपनी अंतरात्मा की प्रेरणा से कोई आपत्ति है। तो क्या वे हैदराबाद रियासत के आंध्र वाले (तेलुगु–भाषी) हिस्से में एक अंतःक्षेत्र (एन्क्लेव) बनाकर उसे नए आंध्र राज्य में नहीं मिला सकते? इस तरह वारंगल का मामला सुलझ सकता है। अंतः क्षेत्र बनाना भारत में कोई नई घटना नहीं होगी। किंतु प्रधानमंत्री तो हैदराबाद में, और कश्मीर में भी विधि के विधान के विपरीत काम करने को कटिबद्ध हैं। मुझे विश्वास है कि उन्हें शीघ्र ही इसके परिणामों से सीख मिल जाएगी।

पहली शर्त

यह केवल संयोग है। मुख्य बात तो यह है कि भाषा पर आधारित राज्य को आर्थिक दृष्टि से आत्म–निर्भर होना चाहिए। भाषावार राज्य के गठन का यह पहला विचारणीय बिंदु है। दूसरा बिंदु यह होगा कि हम इस बात का पूर्वानुमान लगा सकें कि भाषावार प्रांत में क्या होने वाला है। दुर्भाग्यवश किसी ने भारत की जनसंख्या के स्वरूप का सर्वेक्षण करने की ओर ध्यान नहीं दिया है। जनगणना की रिपोर्टों से हमें केवल इतना पता चलता है कि हिन्दू कितने हैं, मुसलमान कितने है, यहूदियों और ईसाइयों की संख्या कितनी है, या फिर हम यह जान सकते हैं कि अछूतों की संख्या अमुक–अमुक है। ये रिपोर्टें केवल हमारी इतनी जानकारी बढ़ाती हैं कि भारत में ये–ये धर्म प्रचलित हैं। धर्मों की संख्या जान लेने के अतिरिक्त इस प्रकार की सूचना का और कोई महत्व नहीं है। हम तो यह जानना चाहते हैं कि ये रिपोर्टें हमें यह बताएं कि भिन्न–भिन्न भाषा क्षेत्रों में जातियों का विभाजन कैसा है, किंतु इनमें इस प्रकार की सूचना उपलब्ध नहीं होती। हमें अपने ज्ञान और जानकारी पर ही भरोसा करना पड़ता है। यदि यह कहूं कि किसी भाषा क्षेत्र में जातियों का विभाजन प्रायः इस तरह का होता है, अर्थात् उसमें एक या दो बहुसंख्यक घनी जातियां होती हैं और कुछ थोड़ी जातियां होती हैं, जो घनी जातियों के काबू में रहते हुए आश्रित जीवन व्यतीत करती हैं।

सामुदायिक या जातिगत बनावट

मैं कुछ उदाहरण प्रस्तुत करूं। पंजाब की बनावट देखें। पूरे इलाके में जाटों का प्रभुत्व है। अछूत वर्ग के लोग उनके अधीन और उन पर आश्रित हैं। आंध्र का उदाहरण लें : पूरे भाषा क्षेत्र में दो या तीन बड़े समुदाय छाए हुए हैं। वे या तो रेड्डी हैं, या कम्मा और कापू। वे सारी जमीन के मालिक हैं, सारे सरकारी पदों पर वे ही वे दिखाई देते हैं, या फिर सारा व्यवसाय उनके हाथों में है। अछूत उन्हीं के सहारे अपनी गुजर–बसर करते हैं। महाराष्ट्र की स्थिति देखें : पूरे महाराष्ट्र के हर गांव में आपको मराठे भरपूर संख्या में मिलेंगे। वहां ब्राह्मणों, गूजरों, कोलियों और अछूतों की स्थिति दयनीय है। कभी समय था, जब ब्राह्मण और बनिए, निर्भीक जीवन यापन करते थे। किंतु अब समय बदल गया है। श्री गांधी की हत्या के बाद ब्राह्मण और बनिए मराठों से छिपे–छिपे रहते हैं और वे भागकर कस्बों और शहरों में बस गए हैं, क्योंकि वहां वे अपने आपको अधिक सुरक्षित महसूस करते हैं। केवल अभागे अछूत, कोली और माली ही बहुमत वाले मराठा समुदाय के अत्याचारों को सहन करने के लिए गांवों में बच रहे हैं। इस जातिगत बनावट को जो अनदेखा करेगा, वह स्वयं अपने जीवन को खतरे में डालने का जिम्मेदार होगा।

भाषावार प्रांतों में छोटे–छोटे समुदायों, अर्थात अल्पसंख्यक जातियों का क्या भविष्य है। क्या वे विधायिका में चुने जाने की आशा रखें? क्या उन्हें राज्य–सेवा में कोई पद मिलने की आशा है? उनकी आर्थिक उन्नति के लिए क्या कोई ध्यान देने वाला है? इन परिस्थितियों में भाषायी प्रांत के गठन का अर्थ होगा–स्वराज को किसी एक बहुसंख्यक समुदाय के हाथों में सौंप देना। श्री गांधी के स्वराज की क्या दुर्दशा है। जो लोग समस्या के इस पहलू को नहीं समझते या समझना नहीं चाहते, वे इसे तभी भली–भांति समझेंगे, जब हम भाषायी राज्य जैसे शब्द का प्रयोग न कर जाट राज्य, रेड्डी राज्य या मराठा राज्य कहेंगे।

तीसरा मसला

विचारणीय तीसरा मुद्दा यह है कि क्या भाषावार राज्यों के निर्माण का यह अर्थ लिया जाए कि एक भाषा बोलने वाले सभी लोगों को एक राज्य में इकट्ठा कर दिया जाएगा। क्या महाराष्ट्र राज्य में सभी मराठी–भाषियों को एकत्रित किया जाना है। क्या सभी (तेलुगु–भाषा) आंध्र क्षेत्रों को आंध्र राज्य में मिला दिया जाएगा? एकत्रीकरण का यह प्रश्न केवल नई इकाइयों से ही संबंधित नहीं है। इसका संबंध यू. पी. बिहार और पश्चिमी बंगाल जैसे भाषा पर आधारित वर्तमान प्रांतों से भी है। जैसा कि यू.पी. के प्रसंग में हुआ है, सभी हिन्दी–भाषी लोगों को एक राज्य में समेकित करना क्यों आवश्यक है? जो ऐसे समेकन या एकत्रीकरण की मांग करते हैं, उनसे पूछा जाना चाहिए कि क्या वे अन्य राज्यों के साथ युद्ध करने जा रहे हैं। यदि समेकन से पृथकता का भाव पुष्ट होता हो तो आगे चलकर हमारा भारत ठीक उसी स्थिति में पहुंच जाएगा, जैसी स्थिति इस देश की मौर्य साम्राज्य के पतन या बिखराव के बाद हुई थी। क्या भाग्य हमें उसी ओर धकेल रहा है।

इसका यह अर्थ नहीं कि भाषावार प्रांतों के गठन का कोई औचित्य दिखाई नहीं देता। इसका तो अर्थ केवल इतना है कि भाषावार प्रांत का मुखौटा पहन कर कोई बहुसंख्यक समुदाय शक्ति का दुरूप्रयोग न करने पाए, अर्थात् भाषावार प्रांतों के निर्माण के साथ ही उन पर निरीक्षण और नियंत्रण के उपाय भी सोचने होंगे।

साभार :
बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर सम्पूर्ण वाङ्मय खण्ड–1, पेज संख्या 163 से 167 तक
डॉ. बी. आर. अम्बेडकर

अधःपतन से मुक्ति

भारत के विभाजन और पृथक मुस्लिम राज्यों की स्थापना के लिए भारतीय मुसलमानों द्वारा की जा रही मांग का औचित्य क्या है? यह विद्रोह क्यों है और शिकायत क्या है? स्वाभाविक आक्रोश से हिंदू ये प्रश्न उठाते हैं।

जिस किसी को इतिहास का ज्ञान है, उसे यह अनुभूति हुए बिना नहीं रहेगी कि अब यह एक सुस्थापित सिद्धांत है कि राष्ट्रवाद राष्ट्रीय राज्य के निर्माण हेतु समुचित तर्कसंगत आधार है जैसा कि महान इतिहासकार लॉर्ड एक्टन ने कहा है–

''पुरानी यूरोपीयन व्यवस्था में सरकारों ने न तो राष्ट्रीयता के अधिकारों को मान्यता दी थी और न लोगों ने ही इस पर जोर दिया था। सीमाओं का नियमन शासक परिवारों के हित थे, न कि राष्ट्रों के, और प्रशासन का सचालन भी जनाकांक्षाओं की परवाह किए बिना ही होता था। जहां सभी तरह की स्वतंत्रता का दमन किया जाता था, वहां राष्ट्रीय स्वतंत्रता की उपेक्षा होना तो अनिवार्य था ही, और फेनेलोन के शब्दों में, एक राजकुमारी अपने विवाह के भाग (दहेज) स्वरूप राजतंत्र को भी अपने साथ लाती थी।

पहले–पहल राष्ट्रीयताएं किसी सूची में ही नहीं थी। फिर जब उनमें (लोगों में) चेतना का सृजन हुआ तो :

''सर्वप्रथम वे अपने वैध शासकों की रक्षा के लिए विजेताओं के विरूद्ध खड़े हो गए। उन्होंने सत्ता हड़पने वाले विजेताओं द्वारा शासित होने से इंकार कर दिया। उसके बाद ऐसा समय आया जब उन्होंने शासकों द्वारा अपने ऊपर किए गए अन्यायों के विरूद्ध विद्रोह किया। इन विद्रोहों को उन विशिष्ट शिकायतों ने बढ़ावा दिया जिनका सुनिश्चित और न्यायसंगत आधार था। उसके बाद फ्रांस की क्रांति ने आमूलचूल परिवर्तन ही ला दिया। उसने लोगों को यह सिखाया कि वे जो कुछ भी करना चाहते हैं, उस सब को करने के अपने अधिकार का सर्वोच्च मानदंड अपनी इच्छाओं और आकांक्षाओं को बनाएं। इसने जनता की उस सार्वभौमिकता का आह्वान किया जो अतीत से भी अनियंत्रित थी और मौजूद राज्य से भी नियंत्रित नहीं थी। फ्रांसीसी क्रांति की यह शिक्षा सभी उदारवादी विचारकों के लिए एक मान्य सिद्धांत बन गई। मिल ने उसका समर्थन किया। मिल ने कहा कि शायद ही किसी को पता हो कि मानव जाति के किसी भाग को आचरण की छूट हो, भले ही उन्हें यह तय करने की छूट हो कि मानव के विभिन्न सामूहिक संगठनों में से वे खुद को किससे जोड़ना चाहते हैं।

उन्होंने यहां तक कहा कि :

''सामान्यतः स्वतंत्र संस्थानों के लिए यह एक आवश्यक शर्त है कि सरकारों की सीमाएं राष्ट्रीयताओं के आधार के अनुरूप होनी चाहिए।

इस प्रकार इतिहास यह दर्शाता है कि राष्ट्रीयता का सिद्धांत जनाकांक्षा की प्रभुसत्ता के लोकतांत्रिक सिद्धांत के अंतर्भूत है। इसका तात्पर्य यह है कि किसी राष्ट्रीयता द्वारा राष्ट्रीय राज्य की मांग के पीछे शिकायतों का होना जरूरी नहीं है। जन–आकांक्षा ही उसे न्यायसंगत सिद्ध करने के लिए पर्याप्त हैं।

किंतु यदि मुसलमान अपने दावे के समर्थन में शिकायतों का उल्लेख करना आवश्यक समझते हैं तो इन्हें सार–रूप में इस एक वाक्य में समाहित किया जा सकता है कि संवैधानिक संरक्षण उन्हें हिंदू बहुसंख्यकों के अत्याचार से बचाने में असफल रहे हैं।

गोलमेज सम्मेलन में मुसलमान ने अपने उन संरक्षणों की सूची पेश की थी जिनको बहुचर्चित चौदह सूत्रों के तहत समाहित किया गया था। गोलमेज सम्मेलन में हिंदू प्रतिनिधियों ने उन्हें नहीं माना, अतएव गतिरोध उत्पन्न हो गया। ब्रिटिश सरकार ने हस्तक्षेप कर एक फैसला दिया, जिसे सांप्रदायिक निर्णय (कम्यूनल अवार्ड) कहा जाता है। इस फैसले में मुसलमानों के सभी चौदह सूत्र मान लिए गए सांप्रदायिक निर्णय को लेकर हिंदुओं में प्रबल कटुता पैदा हो गई। उसमें कांग्रेस सहभागी नहीं बनी, यद्यपि उसने इस निर्णय को राष्ट्र विरोधी बताने तथा मुसलमानों की भावनाओं को आघात नहीं लगने देने को लेकर कांग्रेस इतनी अधिक सतर्क थी कि जब केंद्रीय असेंबली में सांप्रदायिक निर्णय की भर्त्सना का प्रस्ताव पेश हुआ तो कांग्रेस ने उसका समर्थन तो नहीं किया, किंतु उसका विरोध भी नहीं किया और वह तटस्थ रही। मुसलमानों का कांग्रेस के इस रवैए को मैत्रीपूर्ण मानना उचित ही था।

हिंदू बहुल प्रांतों में कांग्रेस को चुनावों में मिली विजय से मुसलमानों की शान्ति में कोई व्यवधान उपस्थित नहीं हुआ। उन्होंने महसूस किया कि कांग्रेस से भयभीत होने की कोई आवश्यकता नहीं है और ऐसी संभावनाएं थी कि कांग्रेस और मुस्लिम लीग एकजुट होकर कार्य करेंगी। किंतु हिंदू प्रांतों में दो वर्ष और तीन माह के कांग्रेसी शासन ने उन्हें पूरी तरह निराश कर कांग्रेस का कट्टर शत्रु ही बना दिया। 22 दिसंबर, 1939 को मनाया गया मुक्ति दिवस उनके रोष की गहनता का परिचायक था। गोलमेज सम्मेलन में जो मुसलमान स्वराज्य की मांग में सहयोगी थे वही आज स्वराज के कट्टर विरोधी बन गए हैं।

कांग्रेस ने ऐसा क्या किया है जिससे मुसलमान उसके इतने अधिक विरोधी हो गए? मुस्लिम लीग का दावा है कि कांग्रेसी शासन के तहत मुसलमानों का वस्तुतः दमन हुआ है और उनका उत्पीड़न हुआ है। लीग ने इस मामले की जांच करने और अपनी रिपोर्ट देने के लिए दो समितियां नियुक्त की गई बताई हैं। किंतु इन मामलो के अलावा, जिनकी जांच एक निष्पक्ष न्यायाधिकरण द्वारा की जानी अपेक्षित है, दो बातें असंदिग्ध तौर पर सामने आईं, जिनसे संघर्ष हुआ (1) कांग्रेस द्वारा मुसलमानों के एकमात्र प्रतिनिधि संगठन के रूप में मुस्लिम लीग को मान्यता देने से इंकार (2) कांग्रेस शासित प्रांतों में कांग्रेस का मिले–जुले मंत्रिमंडलों का गठन करने से इंकार।

जहां तक पहला सवाल है, कांग्रेस और मुस्लिम लीग दोनों ने कठोर रूप अपनाया है। कांग्रेस मुस्लिम लीग को अहरारों, दि नेशनल मुस्लिम तथा जमीयत–उल–उलेमा जैसे अनेक मुस्लिम राजनीतिक संगठनों में से एक मानने को तैयार है, किंतु इसे वह मुसलमानों का एकमात्र प्रतिनिधि संगठन नहीं मानती। दूसरी ओर मुस्लिम लीग तब तक किसी विचार–विमर्श में शामिल होने को तैयार नहीं है जब तक कि कांग्रेस उसे भारत के मुसलमानों की एकमात्र प्रतिनिधि संस्था नहीं मान लेती। लीग के इस दावे को हिंदू अतिरेकी बताते है और उसे हास्यास्पद जताने का प्रयास करते है। मुसलमान कह सकते है कि यदि हिंदू यह जांच–पड़ताल करना बंद कर दें कि राष्ट्रों के बीच संधियां कैसे होती हैं तो उन्हें अपने दृष्टिकोण की मूर्खता का अहसास हो जाएगा। यह दलील भी दी जा सकती है कि जब कोई राष्ट्र दूसरे राष्ट्र के साथ संधि करने के लिए आगे बढ़ता है, तो वह दूसरे राष्ट्र की सरकार को पूर्ण प्रतिनिधित्व करने वाली स्वीकार करता है। किसी भी देश में विद्यमान कोई सरकार समग्र जनता का प्रतिनिधित्व नहीं करती, सभी जगह बहुमत का ही प्रतिनिधित्व करती है। परंतु राष्ट्र केवल इसी कारण अपने विवादों को निपटाना अस्वीकार नहीं कर देते कि सरकारें, जो लोगों का प्रतिनिधित्व करती है, संपूर्ण जनता का प्रतिनिधित्व नहीं करती। यदि एक सरकार अपने यहां के बहुमत का प्रतिनिधित्व करती है तो यही पर्याप्त है।

मुसलमान यह तर्क दे सकते हैं कि इस मामले में यह बात कांग्रेस व लीग के विवाद पर लागू होनी चाहिए। लीग भले ही संपूर्ण मुसलमानों का प्रतिनिधित्व न करे, परंतु यदि वह उनके बहुमत का प्रतिनिधित्व करती है तो कांग्रेस को हिंदू–मुस्लिम सवाल पर समझौता करने के उद्देश्य से उसके साथ विचार–विमर्श में कोई संकोच नहीं करना चाहिए। वस्तुतः किसी भी देश की सरकार को यह अधिकार है कि वह दूसरे ऐसे देश की सरकार को मान्यता न दे जहां एक से अधिक पक्ष या संगठन सरकार के दावेदार हो। उसी तरह कांग्रेस भले ही लीग को मान्यता न दे, मगर वह नेशनल मुस्लिम अथवा अहरारों या जमीयत–उल–उलेमा में से किसी एक को तो मान्यता दे और दोनों समुदायों के बीच समझौते की शर्तें तय करें। वास्तव में उसे इस बारे में पूर्ण जानकारी प्राप्त कर काम करना चाहिए कि लीग से समझौते अथवा अन्य मुस्लिम दलों से समझौते में से किसे मुसलमानों द्वारा ठुकरा दिए जाने की अधिक आशका है। कांग्रेस को किसी न किसी से बात करनी ही होगी। किसी से भी बात नहीं करना तो मूर्खतापूर्ण ही नहीं, शरारतपूर्ण भी माना जाएगा। कांग्रेस के इस रवैए से तो मुसलमानों में रोष ही बढ़ेगा और उन्हें विक्षुब्ध करेगा। मुसलमान कांग्रेस के इस रवैये की यह व्याख्या कर सकते हैं कि यह उनके मोर्चे को कमजोर करने और उनमें भ्रम पैदा करने तथा फूट डालने का प्रयास है। दूसरे मुद्दे के बारे में मुसलमानों ने मांग की है कि मंत्रिमंडलों में ऐसे मुस्लिम मंत्रियों को शामिल किया जाए, जिन्हें विधानमंडल के मुसलमान सदस्यों का विश्वास प्राप्त हो। उन्हें आशा थी कि यदि कांग्रेस सत्ता में आई तो वह उनकी इस मांग को मान लेगी, परंतु वे अत्यंत निराश हुए है। इस मांग के बारे में कांग्रेस ने वैधानिक मार्ग अपनाया। कांग्रेस ने मुसलमानों को अपने मंत्रिमंडलों में इस शर्त पर शामिल करना स्वीकार किया कि वे पहले अपने दलों से त्यागपत्र देकर कांग्रेस में शामिल हों और कांग्रेस के संकल्प पर हस्ताक्षर करें। इसका मुसलमानों ने तीन आधारों पर विरोध किया।

सर्वप्रथम, मुसलमानों ने इसे विश्वासघात की संज्ञा दी। मुसलमानों का कहना है कि उनकी मांग संविधान की भावना के अनुरूप है। गोलमेज सम्मेलन में इस बात पर सहमति हुई थी कि मंत्रिमंडल में अल्पसंख्यक समुदायों के प्रतिनिधि शामिल किए जाएंगे। अल्पसंख्यकों ने इस बात पर जोर दिया कि इस आशय के प्रावधान को कानूनी स्वरूप दिया जाना चाहिए। दूसरी ओर, हिंदू यह चाहते थे कि यह मामला सामान्य सम्मति के अनुसार निपटाया जाए। एक मध्यम मार्ग खोजा गया। इस पर सहमति हुई कि प्रांतो के गर्वनरों को दिए जाने वाले निर्देशों में इस बात का प्रावधान किया जाए और उन पर यह दायित्व सौंपा जाए कि वे सुनिश्चित करे कि मंत्रिमंडलों के गठन में लोकसम्मति का आदर हो। मुसलमानों ने इस बात पर जोर नहीं दिया कि इस प्रावधान को कानूनी रूप दिया जाए, क्योंकि उन्हें हिंदुओं की सद्भावना पर भरोसा था।

इस समझौते को उसी पार्टी ने तोड़ा जिसने मुसलमानों को आश्वासन दिया था कि उनके प्रति उसका रवैया सही ही नहीं, बल्कि संगत व अनुकूल भी होगा।

दूसरी बात यह है कि मुसलमानों ने यह महसूस किया कि कांग्रेस का दृष्टिकोण लोकसम्मति के वास्तविक दायरे का विकृत रूप है। वे निर्देशन–पत्र के अनुच्छेद के मूल पाठ पर भरोसा करते हैं और उनकी यह दलील है कि उसमें अल्पसंख्यक समुदाय के सदस्य शब्दों का केवल एक ही अर्थ हो सकता है और वह यह कि ऐसा व्यक्ति जिसे समुदाय का विश्वास प्राप्त हो। कांग्रेस द्वारा अपनाई गई स्थिति इस अनुच्छेद के अर्थों से सर्वथा विपरीत है और देश में सभी दलों को तोड़ने के लिए किया जा रहा छद्म प्रयास है, जिसका उद्देश्य कांग्रेस को ही देश में एकमात्र राजनीतिक दल बनाना है। कांग्रेस के संकल्प–पत्र पर हस्ताक्षर करने की मांग के पीछे इसके अलावा और कोई इरादा नहीं हो सकता। हिंदू ही ऐसे सर्वाधिकारीवादी राज्य की स्थापना के प्रयास का स्वागत कर सकते हैं, परंतु मुसलमानों के लिए तो यह एक स्वतंत्र समाज के रूप में मुसलमानों की राजनीतिक मृत्यु मात्र है।

मुसलमानों का यह रोष तब और अधिक बढ़ गया जब उन्होंने देखा कि गवर्नरों ने जिन्हें यह देखने का दायित्व सौंपा गया था कि समझौता लागू हो, इस बारे में कोई कदम उठाने से ही इन्कार कर दिया। कुछ गवर्नरों ने तो इस आधार पर इन्कार किया कि वे इस वास्तविकता के कारण असहाय थे कि कांग्रेस ही एकमात्र बहुमत प्राप्त दल है जो स्थिर सरकार का गठन करने में समर्थ है, कि कांग्रेस की ही सरकार बनाना संभव है, और संविधान का निलंबन करने के अलावा इस स्थिति को टालने का अन्य कोई विकल्प नहीं है। अन्य गवर्नरों ने इसलिए इंकार कर दिया क्योंकि वे कांग्रेस सरकार के सक्रिय समर्थक हो गए थे और उन्होंने कांग्रेस की प्रशंसा करके अथवा खादी पहनकर, जो कांग्रेस पार्टी की अधिकृत वेशभूषा है, पक्षपात का परिचय दिया। कारण चाहे जो भी हो, मुसलमानों को ऐसा लगा कि एक महत्वपूर्ण संरक्षण उनकी रक्षा करने में असफल रहा है।

कांग्रेस ने मुसलमानों के इन आरोपों का दो तरह से उत्तर दिया। पहला तो यह कि वे यह कहते हैं कि मिलाजुला मंत्रिमंडल, मंत्रिमंडलों के सामूहिक दायित्व से असंगत है। इसे मुसलमान एक ईमानदार दलील मानने से इंकार करते हैं। अंग्रेज ही ऐसे पहले लोग हैं, जिन्होंने इसे अपनी शासन प्रणाली का सिद्धांत बनाया। परंतु वहां भी अब इसे त्याग दिया गया है। ब्रिटिश संसद ने इस मुद्दे पर चर्चा की और वह इस निष्कर्ष पर पहुंची कि यह अब उतना पावन नहीं रहा है जितना कि कभी इसे माना जाता था, और इसे त्याग देने से शासन–तंत्र के सुचारू और प्रभावी ढंग से काम–काज का प्रभावित होना जरूरी नहीं है। दूसरे, तथ्यतः कांग्रेस सरकार में कोई सामूहिक दायित्व है ही नहीं। यह सरकार तो विभागों द्वारा चलाई जाती है। प्रत्येक मंत्री दूसरे से स्वतंत्र है और प्रधानमंत्री भी मंत्री के ही तुल्य है। कांग्रेस द्वारा सामूहिक दायित्व की बात करना वास्तव में निरर्थक है। यह दलील असत्य भी है, क्योंकि यह एक हकीकत है कि जिन प्रांतों में कांग्रेस अल्पमत में थी, वहां उसने मिला–जुला मंत्रीमंडल बनाया और अन्य दलों के मंत्रियों से कांग्रेस के संकल्प–पत्र पर हस्ताक्षर करने की मांग नहीं की। मुसलमान यह सवाल कर सकते हैं कि यदि मिलीजुली सरकार बुरी है तो वह एक स्थान पर बुरी और दूसरे पर अच्छी कैसे हो सकती है।

कांग्रेस का दूसरा जवाब यह है कि यदि उन्होंने अपने मंत्रिमंडल में ऐसे मुस्लिम मंत्री लिए भी हैं जिन्हें मुसलमानों के बहुमत का विश्वास प्राप्त नहीं है, तो भी वे उनके हितों की रक्षा करने में असफल नहीं रहे। वास्तव में उन्होंने मुसलमानों के हितों को बढ़ावा देने के लिए हर बात की है। निस्संदेह का कथन पोप के उस दृष्टिकोण पर आधारित है जो उन्होंने सरकार के बारे में यह कहकर व्यक्त किया था :

''सरकार के स्वरूप के बारे में मूर्खों को बहस करने दीजिए; जो श्रेष्ठतम प्रशासन दे सके, वही सरकार सर्वश्रेष्ठ है।''

ऐसा लगता है कि यह जवाब देते हुए कांग्रेस हाई कमान ने सही तौर पर यह समझा ही नहीं है कि मुसलमानों और अन्य अल्पसंख्यकों की वास्तविक धारणा क्या रही है। उनका विवाद इस बात को लेकर नहीं है कि कांग्रेस ने मुसलमानों और अल्पसंख्यकों का कुछ भला किया है या नहीं। उनका विवाद सर्वथा अलग मुद्दों को लेकर है। क्या स्वराज के तहत हिन्दू शासक हिन्दू जाति के होगे और मुसलमान तथा अन्य अल्पसंख्यक उनके प्रजाजन होंगे? मिलेजुले मंत्रिमंडल के लिए की गई मांग में यही मुद्दा निहित है। उस पर मुलसमानों और अन्य अल्पसंख्यकों ने निश्चित रवैया अपनाया है। वे प्रयाजनों की स्थिति स्वीकार करने को तैयार नहीं है।

यह कहना कि सत्तारूढ़ समुदाय ने शासितों का भला किया है, मुद्दे से सर्वथा अलग है और इसे अल्पसंख्यकों की इस सोच का कोई जवाब नहीं कहा जा सकता कि वे शासित जन जैसा व्यवहार सहन करने को तैयार नहीं है। अंग्रेजों ने भारत में भारतीयों की भलाई के लिए बहुत से काम किए है। उन्होंने सड़कों को सुधारा है, नहरें अधिक वैज्ञानिक सिद्धांतों के आधार पर बनाई है, रेल का निर्माण कर परिवहन को सुधारा है, नाममात्र के शुल्क पर पत्रों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर भेजने की व्यवस्था की है, तार भेजने की व्यवस्था की है, मुद्रा में सुधार किया है, माप–तौल–प्रणाली का नियमन किया है, भूगोल, नक्षत्र–विद्या और औषधियों के बारे में उनकी सोच को सही किया है और उनके आंतरिक झगड़ों को रोका है, तथा उनकी आर्थिक हालत भी एक सीमा तक सुधरी है। सरकार के इन भलाई वाले कामों के बावजूद, क्या कोई भारतीयों से यह कहता है कि वे अंग्रेजों का आभार माने और स्वशासन या स्वराज के लिए आंदोलन करना छोड़ दें? अथवा क्या सामाजिक उत्थान के इन कार्यों के कारण भारतीयों ने अंग्रेजों द्वारा उनसे किए जाने वाले शासित जाति के व्यवहार का विरोध करना छोड़ दिया है? स्पष्ट है कि भारतीयों ने ऐसा कुछ भी नहीं किया। वे इन कल्याण–कार्यों से संतुष्ट नहीं हुए और अपना शासन स्वयं चलाने के अधिकार की प्राप्ति के लिए आंदोलन जारी रखा हुआ है। होना भी यही चाहिए जैसा कि आइरिश देशभक्त क्यूरेन ने कहा था, कोई भी व्यक्ति अपने आत्मसम्मान की कीमत पर किसी का आभारी नहीं हो सकता, कोई भी महिला अपने स्त्रीत्व की कीमत पर किसी का आभार व्यक्त नहीं कर सकती और कोई भी राष्ट्र अपनी गौरव–गरिमा की कीमत पर किसी का आभारी नहीं बन सकता। इसके विपरीत, कोई भी व्यवहार यही दर्शाएगा कि उसका जीवन–दर्शन वैसा ही है, जिसे कार्लाइल ने 'शूकर दर्शन' का नाम दिया है। ऐसा लगता है कि कांग्रेस हाईकमान को यह अनुभूति ही नहीं हो पा रही है कि मुसलमान और अन्य अल्पसंख्यक कांग्रेस के द्वारा दिए जा रहे सुझावों की अपेक्षा अपनी पहचान और आत्म–सम्मान को ज्यादा महत्व देते हैं। जो लोग अपने आत्म–सम्मान के बारे में अधिक सजग हैं, वे ऐसे 'शूकर' नहीं है जो सिर्फ ऐसे भोजन के लिए ही चिंतित रहते हैं जिससे उनका मोटापा और बढ़े। उनमें जो गौरव–बोध है, उसे वे स्वर्ग के बदले भी त्याग देने के लिए तैयार नहीं होंगे। संक्षेप में यही कहा जा सकता है कि भोजन से जीवन अधिक मूल्यवान है।

यह कहने का कोई लाभ नहीं कि कांग्रेस हिंदू संगठन नहीं है। एक ऐसा संगठन जो अपने गठन में हिंदू ही है, वह हिंदू मानस की ही अभिव्यक्ति करेगा और हिंदू–आकांक्षाओं का ही समर्थन करेगा। कांग्रेस और हिंदू महासभा में इतना ही अंतर है कि जहां हिंदू महासभा अपने कथनों में अधिक अभद्र है और अपने कृत्यों में भी कठोर है, वहीं कांग्रेस नीति–निपुण और शिष्ट है। इस तथ्यगत अंतर के अलावा कांग्रेस और हिंदू महासभा के बीच कोई अंतर नहीं है।

इसी तरह, यह कहने का भी कोई लाभ नहीं कि कांग्रेस शासक और शासित के बीच कोई अंतर नहीं मानती। यदि ऐसा ही है तो कांग्रेस को अन्य समुदायों को स्वतंत्र और बराबर का सहभागी मानकर अपनी सदाशयता का परिचय देना चाहिए। ऐसी मान्यता की कसौटी क्या है? मेरी राय में तो एक ही कसौटी हो सकती है – वह है अल्पसंख्यक समुदायों के प्रभावी प्रतिनिधियों को सत्ता में भागीदारी देने की सहमति। क्या कांग्रेस इसके लिए तैयार है? प्रत्येक व्यक्ति इस प्रश्न का उत्तर जानता है। कांग्रेस किसी समुदाय के किसी ऐसे सदस्य के साथ सत्ता में हिस्सेदारी को तैयार नहीं है जो कांग्रेस के प्रति निष्ठावान हो। कांग्रेस के प्रति निष्ठा सत्ता में भागीदारी की पूर्व शर्त है। कांग्रेस का यही नियम प्रतीत होता है कि यदि कोई समुदाय कांग्रेस के प्रति निष्ठावान नहीं हैं, तो उसे राजनीतिक सत्ता से परे रखा जाए।

राजनीतिक सत्ता में शामिल नहीं किया जाना ही सत्तारूढ़ जाति और शासित जाति के बीच अंतर का सार है, और जब तक कांग्रेस इस सिद्धांत को कायम रखेगी, तब तक यही कहा जाएगा कि कांग्रेस जब गद्दी पर थी तो भी उसने इसी तरह का भेदभाव बरता था। मुसलमानों को यह शिकायत हो सकती है कि उन्होंने काफी कष्ट भोग लिया है और इस तरह उन्हें शासित जाति की स्थिति में पहुंचा दिया जाना अंतिम प्रहार की लोकोक्ति को ही साकार करना है। देश पर ब्रिटिश अधिकार के साथ ही भारत में उनका पराभव और पतन शुरू हो गया था। अंग्रेजों द्वारा लागू किए गए प्रत्येक व्यवस्थापन, प्रशासनिक अथवा कानूनी परिवर्तन, से मुस्लिम समुदाय पर अनेक प्रहार हुए हैं। भारत के मुस्लिम शासकों ने हिंदुओं को अपने कानून और नागरिक मामलों में अपनी प्रणाली कायम रखने की अनुमति दी थी। ब्रिटिश शासन ने जो पहला काम किया वह यह है कि उसने शनैः शनैः हिंदू फौजदारी कानून समाप्त किया और मुस्लिम फौजदारी कानून बनाया, जिसे हिंदुओं और मुसलमानों पर लागू किया। और फिर धीरे–धीरे मुस्लिम फौजदारी कानून के स्थान पर मैकाले की दंड–संहिता लागू करके अपने ही कानून थोप दिए।

मुस्लिम समुदाय की हैसियत और गौरव पर यह पहला आघात था। इसके बाद शरीयत अथवा मुस्लिम नागरिक कानून के क्षेत्राधिकार को घटाया गया। इसका क्रियान्वयन व्यक्तिगत संबंधों से संबंधित मामलों, जैसे विवाह और उत्तराधिकार तक ही सीमित कर दिया, और वह भी उसी हद तक जिसकी ब्रिटिश अनुमति दें। इसके साथ ही साथ, 1837 में फारसी भाषा को, जो अदालतों और सामान्य प्रशासन की सरकारी भाषा थी, समाप्त कर दिया गया और उसके स्थान पर अंग्रेजी और देशी भाषाओं को लागू किया गया। उसके बाद काजी हटाए गए, जो मुस्लिम शासन के दौरान शरीयत को लागू करते थे। उनके स्थान पर विधि–अधिकारी और न्यायाधीश नियुक्त किए गए, जो किसी भी धर्म के मानने वाले हो सकते है परंतु उन्हें मुस्लिम कानून की व्याख्या करने का अधिकार प्राप्त हो गया और उनके फैसलों को मानने के लिए मुसलमानों को बाध्य कर दिया गया। मुसलमानों को लगे ये प्रबल आघात थे। परिणामतः मुसलमानों को यह प्रतीत हुआ कि वे प्रतिष्ठा से वंचित हो गए, उनके कानून हटा दिए गए, उनकी भाषा त्याग दी गई और उनकी शिक्षा अपना वित्तीय महत्व गंवा बैठी। इनके साथ ही साथ सिंध और अवध के अधिग्रहण तथा विद्रोह के कारण भी उन पर प्रचंड प्रहार हुए। इनमें से अंतिम ने तो मुसलमानों के उन उच्च वर्गों को विशेष रूप से प्रभावित किया जिन्हें गदर में उनकी संदिग्ध लिप्तता के कारण दंडित करते हुए ब्रिटिश सत्ता ने व्यापक रूप से उनकी संपत्ति को जब्त कर लिया गया। गदर की समाप्ति के साथ ही साथ मुसलमानों और उनके गौरव को चाहे वे उच्च वर्ग के थे या निम्न वर्ग के, इन घटनाओं ने गहरे तक आहत किया। उनमें निराशा बढ़ी तथा निर्धनता ही उनका प्रारब्ध बन गई। प्रतिष्ठा, शिक्षा और संसाधनों से वंचित मुसलमानों को हिंदुओं का सामना करने के लिए छोड़ दिया गया। ब्रिटिश सत्ता ने तटस्थता का दावा किया था और वह दोनों समुदायों के बीच संघर्ष के परिणाम में भी उदासीन रही। नतीजा यह हुआ कि मुसलमान संघर्ष में पूर्णतः पिछड़ गए। भारत पर ब्रिटिश विजय ने दोनों समुदायों की सापेक्ष स्थिति में एक पूर्ण राजनीतिक क्रांति ही ला दी। मुसलमानों ने छह सौ वर्षों तक हिंदुओं पर हुकूमत की थी। ब्रिटिश सत्ता के आने से वे भी हिंदुओं के स्तर पर ही धकिया दिए गए। मालिकों से वे सहयोगी प्रजाजन बना दिए गए। यह पराभव ही बहुत था, किंतु सहयोगी प्रजाजनों की अपेक्षा हिंदुओं की प्रजा बन जाना तो निश्चय ही अपमानजनक है। मुसलमान पूछते हैं कि क्या यह अस्वाभाविक है यदि वे इस विषम स्थिति से बचने के लिए एक पृथक राष्ट्र की स्थापना की मांग करते हैं, जिसमें मुसलमान एक शांतिपूर्ण गृह प्राप्त कर सकें और जिसमें शासक जाति और शासित जाति के बीच के तनावों द्वारा उनकी जिंदगी को मुसीबत में डालने की कोई गुंजाइश नहीं रहेगी।

साभार :
बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर सम्पूर्ण वाङ्मय
खण्ड–15, पेज संख्या 23 से 31 तक
डॉ. बी. आर. अम्बेडकर

जॉन ड्यूवी से प्रेरणा

जातियों के बारे में अपने प्रबंध में डॉ. अम्बेडकर ने अपने अध्यापक जॉन ड्यूवी का जिक्र किया जिनके प्रति वे आभार प्रकट करते रहे हैं। भारत के लगभग सभी विचारक और नेता इंग्लैंड की उदार विचारधारा से प्रभावित थे, लेकिन डा. अम्बेडकर ही मात्र ऐसे नेता थे जिनका प्रेरणा स्त्रोत अमरीका था। उन्होंने अपने को जॉन ड्यूवी का ऋणी बताया है। जॉन ड्यूवी का दर्शन यथार्थवाद पर टिका है। वे परिणाम को महत्व देते हैं, सिद्धांत को नहीं। वास्तविकता अनुभवों से ही प्रकाश में आती है। यह आशावादी दर्शन है।

एक मूल्यांकन

अम्बेडकर एक विख्यात विद्वान, विशिष्ट शिक्षाविद्, पारंगत राजनेता, प्रभावशाली वक्ता, साहसी त्राता, प्रामाणिक संविधानवेत्ता, योग्य प्रशासक, क्रांतिकारी परिवर्तनों के प्रसिद्ध पक्षधर और दलितों के निर्भीक हिमायती थे। अम्बेडकर के स्वभाव में संस्कृति, विवेक, व्यंग्य, मानवता, तर्कशक्ति, बुद्धिवाद, असमानता के विरूद्ध विक्षोभ, और अन्याय तथा अंधविश्वास के प्रति रोष का सही संतुलन था। उनकी प्रतिभा बहुमुखी थी। गांधीजी उन्हें डरावना और निडर कहा करते थे।

डा. अम्बेडकर ने धार्मिक ग्रंथों के उन अंशों के उद्धृत किया जिनसे समाज के उच्च शिखर पर बैठे लोगों ने ऐसा कुचक्र चलाया कि भेदभाव हमारे धर्म का अंग बन गया और उससे समाज के एक बहुत बड़े वर्ग को शोषण के गर्त में ढकेल दिया गया।

उन्होंने कहा था कि स्वाधीनता संग्राम से भी महत्वपूर्ण अछूतों की सामाजिक स्वाधीनता है। गांधीजी ने कहा था कि उस समय तक स्वराज्य व्यर्थ है जब तक अस्पृश्यता का कलंक हमारे माथे से नहीं हटता। फिर राष्ट्रीय आंदोलन भी इसी आधार पर चला।

डा. अम्बेडकर ने अछूतों को संगठित किया। उन्हें मनुष्यों का दर्जा दिलाया और भारतीय समाज तथा राजनीति में स्थान दिलाया। उनके नेतृत्व के फलस्वरूप एक शिक्षित वर्ग पैदा हुआ और सरकारी सेवाओं में लगा हालांकि इसकी सीमाएं हैं। उनके विचार में लोकतंत्र में अछूतों का राजनैतिक शत्रु ब्राह्मण नहीं है, (हालांकि वह ब्राह्मण विरोधी थे) बल्कि शक्तिशाली कृषक जातियां हैं। उन्होंने महारवतन समाप्त किए जाने पर जोर दिया और जमींदारी प्रथा तोड़ने की चेष्टा की।

डा. अम्बेडकर की जो स्मृतियां शेष हैं उनमें तीन संस्थाएं बहुत महत्वपूर्ण हैं (1) पीपुल्स एजूकेशन सोसायटी 1945 और उसके कालेज (2) बुद्धिस्ट सोसायटी ऑफ इंडिया 1953 और रिपब्लिकन पार्टी ऑफ इंडिया (उनके सिद्धांतों पर उनके निधन के उपरांत बनी)। उन्होंने अनुभव किया कि सुरक्षित स्थानों को समाप्त किए जाए। पहले आम चुनावों में उन्होंने शि. का. फे. और सोशलिस्टों के साथ समझौता कराया लेकिन सोशलिस्टों ने शि. का. फे. के उम्मीदवारों को वोट नहीं दिए। उनके राजनैतिक दल की आस्था अपनी जाति तक ही सीमित थी। क्रिप्स के सामने उन्होंने कहा था कि मैं मजदूर नेता होने की अपेक्षा अपने समुदाय का नेता होना पसंद करूंगा। वे प्रत्येक व्यक्ति का मूल्यांकन इस बात से करते थे कि परिगणित जातियों के लिए उसने क्या किया है।

उन्होंने केंद्रीयकृत सरकार की स्थापना के लिए संघर्ष किया जो कि भारतीय लोकतंत्र के लिए आवश्यक थी। उन्होंने संविधान सभा में संविधान के प्रारूप को पास कराने के लिए विलक्षण क्षमता दिखाई। पर बाद की कुछ घटनाओं से वे कुंठित हो उठे और उन्हें कहना पड़ा कि ''संविधान तैयार करते समय मैं भाड़े का टूट था।'' 1952 के आम चुनावों में उनकी सम्पूर्ण पराजय से उन्हे बहुत निराशा हुई। आम धारणा यह बनी कि अम्बेडकर का कोई खास राजनैतिक प्रभाव नहीं है परंतु उनके विचारों का सम्मान किया जाता रहा। इस सवाल का जवाब आज तक नहीं मिलता कि उन्होंने अपने आपको एक सम्प्रदाय का नेता क्यों कहा, श्रमिक नेता क्यों नहीं कहा? अम्बेडकर का स्वभाव उदारवादी था। उन्होंने संसदीय लोकतंत्र और राज्य समाजवाद पर बल दिया।

अम्बेडकर ने प्रमाणित कर दिया कि वे एक निर्भिक बुद्धिवादी होने के साथ–साथ एक महान् राजनीतिज्ञ भी थे।

उन्होंने भारतीय राजनीति को संकीर्णता, परम्परावाद एवं धर्मवाद से मुक्त कराने की चेष्टा की। उन्होंने देश को वैधानिक ढांचा प्रदान किया और लोगों को स्वतंत्रता का आधार प्रदान किया। भारत में ब्रिटिश शासन के अंतिम दौर में, जब भारत प्रभुता सम्पन्न गणराज्य बनने जा रहा था उस समय के देश के सामाजिक–राजनैतिक इतिहास और संविधान के विकास में उन का नाम प्रमुखता से लिया जाएगा। भारतीय राजनीति के इतिहास में एक राजनीतिज्ञ के रूप में उनकी भूमिका और बौद्धिक योगदान सदा अमर रहेगा। उन्होंने महत्वपूर्ण राजनैतिक फैसलों के हाथ बंटाया और उनकी रचनात्मक राजनीतिमत्ता संविधान रचना के दौरान स्वतः प्रस्फुटित हुई।

अम्बेडकर में भाऊराव गायकवाड़ से कहा कि वे महारवतन बिल के संबंध में अपना संघर्ष स्थगित कर दें क्योंकि वे सोचते थे कि इससे सवर्ण लोग रूष्ट हो सकते हैं। उन्होंने कहा कि इस संघर्ष में महारों के हितों को नुकसान पहुंचेगा। उन्होंने सोचा कि बेकार जेल भरने से कोई लाभ नहीं। उन्होंने अपने अनुयाइयों से कहा कि वे सत्याग्रह का मार्ग त्याग दें। उन्होंने कहा कि सरकार के सामने अछूतों की मांग प्रस्तुत की जाए और इस इस आंदोलन को सामूहिक सत्याग्रह का रूप न दिया जाए। वे सोचते थे कि विधि सम्मत शासन में न केवल क्रांति के खूनी तरीके निकट हैं बल्कि सविनय अवज्ञा, असहयोग और सत्याग्रह भी अवांछनीय है। यद्यपि अम्बेडकर ने पाश्चात्य शिक्षा प्राप्त की थी किंतु वे नेहरू के समान पश्चिम परस्त नहीं थे। उन्होंने घोषणा की कि अछूतों के दो शत्रु हैं : ब्राह्मण और पूंजीवाद, पर इनसे लड़ने का उनका तरीका क्या था। न केवल संसदीय साधनों को अपनाकर बल्कि अन्य समान विचार वाले दलों को सहयोग से वर्ग युद्ध छेड़ना। उनकी राजनीतिक विचारधारा की यही सबसे बड़ी कमजोरी थी।

डा. जाटव ने अम्बेडकर के विचारों को सामाजिक मानवतावाद बताया इनमें निम्नांकित सिद्धांत थे – (1) मानव जाति में समानता, (2) प्रत्येक मानव एक इकाई के रूप में (3) प्रत्येक मानव को सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक और धार्मिक स्वतंत्रा का समानता, भ्रातृत्व और मानव का मानव द्वारा, वर्ग का वर्ग द्वारा तथा राष्ट्र का राष्ट्र द्वारा अत्याचार एवं शोषण बंद करना, (6) संसदीय प्रणाली पर आधारित शासन के अंतर्गत लोकतांत्रिक समाज की स्थापना, (7) सामाजिक सुधार में अहिंसा का मार्ग और वर्णसंघर्ष या गृहयुद्ध से बचने के लिए समझाने–बुझाने का तरीका, (8) किसी भी 'वाद' सिद्धांत का विश्वास की अति से बचना, (9) आध्यात्मिक अनुशासन की आवश्यकता और (10) विश्व प्रेम, समानता और भ्रातृत्व की स्थापना, जिसका उपदेश बुद्ध ने दिया।''

अम्बेडकर की राजनैतिक विचारधारा के सिद्धांत इस प्रकार है : राष्ट्रीयता की व्यावहारिक शक्तियों को मान्यता, स्वतंत्रता, समानता और भ्रातृत्व के आधार पर सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक मुक्ति के लिए धर्म युद्ध, किसी प्रकार के राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक या धार्मिक साम्राज्यवाद का विरोध, मात्र संवैधानिक तरीकों का उपयोग, हिंसा का त्याग, न्याय और शांति प्रेम, लोकतांत्रिक गत्यात्मकता की ओर झुकाव, मानवतावाद जिसके अनुसार मानव सभ्यता और संस्कृति का निर्माता माना जाता है और प्रेम एवं ज्ञान के आधार पर प्रगति की क्षमता रखने वाला समझा जाता है।''

बाद में अम्बेडकर द्वारा पृथक मतदान की मांग त्यागना और राष्ट्रीय नेतृत्व के साथ समझौता करना महत्वपूर्ण बातें थीं। यदि इसका पहले से अनुसरण किया होता तो पूरा राष्ट्रीय आंदोलन ही कुछ और होता। उनका मार्क्सवाद के प्रति विरोध और बौद्ध धर्म में दीक्षा लेना प्रतिक्रियावादी कदम थे। उनके पास कोई वर्ग कार्यक्रम नहीं था। ''इस का पता नहीं चलता कि मार्क्सवाद का तिरस्कार करके और बौद्ध धर्म को उसका विकल्प बनाकर वे किस प्रकार समाजवाद ला सकते थे।'' इस प्रकार उन्होंने मजदूरों और किसानों के सम्पूर्ण आंदोलन को प्रतिक्रियावादी और तात्विक विचारों की ओर मोड़ दिया। दलित जातियों और शोषितों के नेतृत्व के प्रश्न पर बिलगाव की भावना बढ़ी। एक पक्ष द्वारा सामाजिक उद्धार और दूसरे द्वारा राजनैतिक उद्देश्य को चलने से जो द्विभागीकरण हुआ उनके बीच का अंतर समाप्त होना चाहिए था।

डा. अम्बेडकर के नेतृत्व वाले लोगों ने संस्कृतिकरण की अपेक्षा पाश्चात्यीकरण का मार्ग अपनाया। आंतरिक जातीय सुधार, जातिवर्ग के भीतर ही नेतृत्व पर जोर, राजनीतिक मांगे, पौराणिक धर्म की अस्वीकृति आदि ने उनके इस आंदोलन को एक निश्चित दिशा प्रदान की। पृथकतावादी तत्व पहले भी विद्यमान थे और अब भी हैं किंतु एकतावादी तत्वों की सहायता से उन्हें नियंत्रित किया जा सकता है।

स्वाधीन भारत के भावी संविधान में अछूतों की सुरक्षा के लिए राजनैतिक संरक्षण के संबंध में उन्होंने गोलमेज सम्मेलन में एक कार्यक्रम प्रस्तुत किया था। उन्होंने मांग की थी : (1) समान नागरिकता और अस्पृश्यता को गैर–कानूनी मानते हुए मूल अधिकार, (2) समानता के अधिकारों का मुक्त प्रयोग जिसके लिए समुचित संवैधानिक व्यवस्था हो, (3) भेदभाव के विरूद्ध संरक्षण, (4) अनुसूचित जातियों को विधायिकाओं में यथोचित प्रतिनिधित्व, दस वर्ष तक इन वर्गों के लिए पृथक मतदान और वयस्क मताधिकार, (5) सेवाओं में समुचित प्रतिनिधित्व, (6) दुराग्रह तथा अवहेलना से संरक्षण, शिक्षा सुविधाएं आदि, (7) विशेष विभागीय देखभाल, विशेष मंत्री और कल्याण ब्यूरो, और (8) भावी मंत्रिमंडल के स्थान। यदि हम उपरोक्त मांगों का विवेचन करें तो हम पाएंगे कि सब पर अमल हो रहा है जिसका श्रेय अम्बेडकर और भारतीय राष्ट्रीयता की प्रगतिशील प्रजातांत्रिक प्रकृति को है। मूल अधिकारों के संबंध में कराची कांग्रेस अधिवेशन में अप्रैल 1931 में प्रस्ताव पास किया गया था। गांधीजी ने अपने राष्ट्रीय आंदोलन में अस्पृश्यता निवारण कार्यक्रम को शामिल किया। उन्होंने 1920 में कहा ''इस कलंक को धोए बिना स्वराज्य निरर्थक है।''

भारत में सामाजिक आदर्शवाद एवं राजनैतिक आदर्शवाद एक दूसरे के विरोधी रहे हैं। अम्बेडकर समझते थे कि बहुमत का राजनैतिक आदर्शवाद सभी का सामाजिक आदर्शवाद बन जाएगा। उनके अखिल भारतीय नेतृत्व में उनके अपने सम्प्रदाय के प्रति उनकी आस्था प्रकट होती है। उन्होंने अपने वर्ग की स्वतंत्रता एवं कल्याण को स्वराज्य से भी अधिक महत्व दिया। परंतु जब स्वराज्य की प्रगति निकट आई तो उन्होंने राष्ट्रीय नेतृत्व से समझौता कर लिया। राजनीति में उनका प्रभुत्व तो नहीं जमा किंतु उन्होंने महत्वपूर्ण निर्णयों को नवीन दिशा प्रदान की यद्यपि वे अपने समुदाय के नेता थे तथापि उन्होंने भारतीय राजनीति को धर्म निरपेक्ष बनाने की चेष्टा की। भारतीय राजनीति को धर्म निरपेक्षता की ओर अग्रसर करने वाले तत्व थे : पश्चिम का प्रभाव, कानून का शासन, नागरिकों में समानता, विधि रचना और नीति निर्णयों में राजनीतिज्ञों का सहयोग, राजा राममोहन राय, रानाडे, फुले, आगरकर तथा अन्य समाज सुधारकों के व्यापक आंदोलन, प्रजातांत्रिक उदारता और बालिग मताधिकार। भारतीय संविधान की भूमिका इसका अभूतपूर्व उदाहरण है। डा. अम्बेडकर भी उक्त विचारधारा के एक परिपोषक थे।

राष्ट्रीय अखंडता एक ज्वलंत समस्या थी। शिक्षा, आर्थिक विकास, तर्क संगत दृष्टिकोण, आधुनिक विज्ञान और टैक्नोलाजी, सामाजिक–आर्थिक कार्यक्रमों का धर्म निरपेक्ष स्वरूप और संवैधानिक उद्देश्य कुछ ऐसे तत्व थे जिन्होंने राष्ट्रीय एकता की दिशा में महत्वपूर्ण योगदान दिया। भारतीय राष्ट्रीय जीवन को उन्होंने नवजीवन प्रदान किया। राष्ट्र निर्माताओं की श्रृंखला में डा. अम्बेडकर को स्थान दिलाने में उनकी रचनात्मक राजनीतिमत्ता का बहुत सहयोग है।

साभार – भीमराव अम्बेडकर
डब्ल्यू. एन. कुबेर
पृष्ठ सं. 82 से 86

भगवान् बुद्ध : वर्णाश्रम धर्म के प्रथम विद्रोही

महाकारूणिक बहुजन उद्धारक तथागत भगवान बुद्ध का आविर्भाव ईसा पूर्व 563 में हुआ तो उन्होंने ब्राह्मणों की इस जड़वादी मान्यता को कड़ी चुनौती दी। बुद्ध ने आत्मा, परमात्मा, स्वर्ग–नरक, आवागमन, पुनर्जन्म, भाग्यवाद, ब्राह्मणवाद और यज्ञवाद जैसे ब्राह्मवादी सिद्धांतों का मजाक उड़ाया तथा इन्हें बेकार और काल्पनिक बताया। उनके अनुसार, धर्म का केंद्र बिंदु इंसान है, न कि काल्पनिक ईश्वर। उन्होंने कर्म को सर्वोपरि माना और कहा कि ''व्यक्ति जो कुछ भी है, वह अपने अच्छे–बुरे कर्मों के कारण है, न कि किसी अज्ञात ईश्वरीय–शक्ति, पूर्वजन्म के फलाफल अथवा चमत्कार के कारण। इस पृथ्वी पर जिस किसी ने भी जन्म लिया है, उसका नाश निश्चित है। कोई चीज नित्य नहीं है, सब कुछ अनित्य है।'' उन्होंने जन्माधारित जातीय श्रेष्ठता के सिद्धांत की जड़ें हिलाकर रख दीं। फलस्वरूप बहुत संख्या में ब्राह्मण जात्याभिमान को त्यागकर बुद्ध द्वारा स्थापित ''बौद्ध भिक्षुसंघ'' में शामिल हो गए। बुद्ध ने भिक्षुसंघ में शूद्रातिशूद्रों और महिलाओं को भी प्रवेश कराया, जिन्हें ब्राह्मणों ने जानवरों से भी बदतर जीवन जीने को मजबूर कर दिया था। जिस प्रकार भिन्न–भिन्न नामों की नदियाँ भिन्न–भिन्न देशों के लोग बौद्ध भिक्षुसंघ में मिलते हैं। जिस प्रकार सभी नदियाँ 'सागर' में मिलकर अपने नाम और स्थान की पहचान खोकर एक नाम 'सागर' से जानी जाती हैं, उसी प्रकार अनेक जाति व धर्म के लोग बौद्ध भिक्षुसंघ में प्रवेश कर अपना नाम–रूप खोकर बौद्ध बन जाते हैं। सभी की पहचान अलग–अलग जाति के रूप में मिट जाती है। अर्थात् बौद्ध धर्म एक सागर की भाँति है, जिसमें सभी मनुष्य एक समान हो जाते हैं। तत्कालीन राजाओं (बिम्बसार, अजातशत्रु तथा प्रसेनजित) ने बुद्ध से शिष्यत्व ग्रहण किया तथा उनके धम्म–संदेश के प्रचार–प्रसार में हृदय से सहयोग किया। ऐसा होने पर ब्राह्मणी–धर्म (वैदिक धर्म) का दम घुटने लगा तथा प्रत्येक मूलनिवासी ने अपने को बौद्ध धर्म में दीक्षित कर लिया। बाद में हर्षवर्धन, कनिष्क और सम्राट अशोक जैसे राजाओं ने बौद्ध धर्म के कारवाँ को आगे बढ़ाया और उसे विश्व–धर्म के रूप में स्थापित किया।

प्रसिद्ध इतिहासकार स्वप्न कुमार विश्वास ने अपने प्रसिद्ध इतिहास–ग्रंथ 'आर्य आक्रमण और भारत के मूलनिवासी' तथा 'बौद्ध धर्म : मोहनजोदड़ो हड़प्पा नगरों का धर्म' में लिखा है कि सिंधुघाटी सभ्यता (हड़प्पा असुर सभ्यता) के संस्थापक भारत के मूलनिवासी दलित बहुजन समाज से ही थे। डॉ. नवल वियोगी भी 'द फाउंडर ऑफ इंडुस सिविलाइजेशन एण्ड देयर लैटर हिस्ट्री' में भारत के मूलनिवासियों को सिंधुघाटी सभ्यता के नियामक मानते हैं। प्रसिद्ध पुरातत्ववेत्ता सर जॉन मार्शल द्वारा 1921 में सिंधुघाटी सभ्यता (हड़प्पा और मोहनजोदड़ो शहर) की कराई गई खुदाई में पीपल पत्र, सांड, हिरण, मोर, हाथी तथा योगमुद्रा युक्त सिक्के मिले हैं। इनके अध्ययन से पता चलता है कि भारत के मूलनिवासी पूर्वज श्रमण–संस्कृति, अर्थात् बौद्ध धर्म में विश्वास करते थे तथा प्रकृति और सांड की पूजा करते थे। प्रकृति से इनकी आवश्यकता पूरी होती थी तथा बैल कृषि के लिए उपयोगी थे, इसलिए वे इनकी पूजा करते थे। उत्खनन में प्राप्त सारे प्रतीक श्रमण–संस्कृति से जुड़े हैं। 'श्रमण' का अर्थ होता है– श्रम द्वारा आध्यात्मिक ज्ञान का विस्तार, श्रम द्वारा जीविकोपार्जन करना। वे ब्राह्मणी धर्म (हिंदू धर्म) से बिल्कुल अनभिज्ञ थे। ब्राह्मणी धर्म (वर्णाश्रम धर्म अथवा हिंदू धर्म) तो विदेशी आर्य–ब्राह्मणों ने ईसा पूर्व 1500 में भारत के मूलनिवासियों को छलपूर्वक विजय कर स्थापित किया था, जबकि हड़प्पा असुर सभ्यता 5500 वर्ष पुरानी सभ्यता है। बाद में ब्राह्मण राजा पुष्यमित्र शुंग, शशांक, सुधन्वा और पेशवाई राजाओं ने वर्णाश्रम धर्म को स्मृति ग्रंथों एवं पुराण ग्रंथों के माध्यम से विस्तारित किया तथा बौद्ध स्तूपों, स्मारकों एवं विहारों को नष्ट कर इसकी जड़ें मजबूत की।

पूर्वबुद्ध

प्रश्न उठ सकता है कि भगवान बुद्ध का जन्म तो ईसा पूर्व 563 में हुआ और उन्होंने ईसा पूर्व 528 में बौद्ध भिक्षुसंघ की स्थापना की तो आज से 5500 वर्ष पूर्व बौद्ध धर्म भारत में मूलनिवासियों का धर्म कैसे हो सकता है? इस प्रश्न का हल इतिहास में मौजूद है। पाठकों को यह समझ लेना चाहिए कि केवल गौतम सिद्धार्थ ही ज्ञानप्राप्ति के बाद बुद्ध नहीं हुए थे। उनके पहले 27 और बुद्ध हुए थे, जिन्हें 'पूर्वबुद्ध' कहा जाता है। इन्हीं पूर्वबुद्धों की परंपरा को आगे बढ़ाते हुए गौतम सिद्धार्थ ने बोधिलाभ के पश्चात बौद्ध भिक्षुसंघ की स्थापना की थी। परमपूज्य डॉ. बाबासाहब की विश्वप्रसिद्ध रचना ''बुद्ध और उनका धम्म'' में वर्णित बुद्धत्व प्राप्त कर वापस कपिलवस्तु लौटने के बाद तथागत बुद्ध और शुद्धोदन का भावपूर्ण ऐतिहासिक संवाद यह प्रमाणित करता है कि बौद्ध धर्म भारत के मूलनिवासियों का धर्म था। जिसकी परंपरा का अनुपालन करके ही गौतम सिद्धार्थ ने भिक्षुसंघ की स्थापना की थी। जब तथागत भगवान बुद्ध कपिलवस्तु में अगले दिन भिक्षापात्र लेकर भिक्षाटन करने निकले तो पूरे शहर में यह बात फैल गई। शुद्धोदन इस बात को जानकर बुद्ध के पास दौड़े गए और कहा कि ''तुम इस प्रकार मुझे क्यों ले जाते हो? क्या तुम इतना नहीं जानते कि मैं तुम्हें और तुम्हारे संघ को भोजन करा सकता हूँ?''

शुद्धोदन–''यह कैसे हो सकता है? हमारे वंश में कभी किसी एक ने भी भिक्षाटन नहीं किया है।''

तथागत–''राजन्! मेरा वंश बुद्धों का वंश है। उन्होंने भिक्षाटन किया है और हमेशा भिक्षा पर ही रहे हैं। मैं आपको यह धम्म निधि अर्पण करता हूँ।''

उपर्युक्त संवाद से स्पष्ट होता है कि भारत के मूलनिवासी श्रमण–संस्कृति में विश्वास करते थे, जिसके पदचिह्नों का अनुसरण तथागत बुद्ध ने किया।

पूर्वबुद्धों का उल्लेख बाबासाहब डॉ. अंबेडकर के अलावा डॉ. रमेश चन्द्र मजूमदार, डॉ. विसेंट स्मिथ, एस. के.विश्वास, राधाकुमुद मुखर्जी, बुद्ध शरण हंस आदि विद्वानों ने अपने–अपने ग्रंथों में किया है। सम्राट अशोक ने कपितलवस्तु के पास पूर्वबुद्ध क्रकुछंद की स्मृति में एक स्तंभ स्थापित किया था, जिसके सिर पर सिंह की पूर्ति थी और पार्श्वों में उनके महापरिनिर्वाण की कथा। उसने एक और पूर्वबुद्ध कोणागमन के स्तूप की पूजा की थी और उसकी मरम्मत भी कराई थी। उस समय के लोकप्रिय बौद्ध धर्म में पूर्वबुद्धों की पूजा का विधान था। अशोक द्वारा पूर्वबुद्ध की पूजा करना, उसके स्तूप की मरम्मत करवाना तथा स्तंभ का निर्माण करवाना, यह प्रमाणित करता है कि बुद्ध धर्म अति प्राचीनकाल से चला आ रहा भारत के मूलनिवासियों का धर्म था, जिससे वह स्वयं को जोड़ना चाहता था। आज भी बौद्ध–विहारों में जब बुद्ध–वंदना होती है तो न केवल गौतम बुद्ध की, बल्कि पूर्वबुद्धों, वर्तमान बुद्धों और भावी बुद्धों की भी वंदना होती है। यथाः

ये च बुद्धा अतीता च ये च बुद्धा अनागता।
पच्चुप्पना च ये बुद्धा, अहं वन्दामि सब्बदा।।

अर्थात् ''भूतकाल में जितने भी बुद्ध हुए हैं, भविष्यकाल में जितने भी बुद्ध होंगे और वर्तमान में जितने भी बुद्ध हैं, मैं उन सबकी सदा वन्दना करता हूँ।''

यद्यपि पूर्वबुद्धों की संख्या 27 थी, तथापि बौद्ध धर्म के नीति नियमों की स्थापना गौतम सिद्धार्थ ने ही सम्यक् सम्बोधित प्राप्त होने के बाद की थी। बुद्ध कोई भी हो सकता है जो लोक कल्याण के निमित्त ज्ञान प्रप्त कर लिया है। गौतम सिद्धार्थ बुद्ध तब बने, जब उनको बोधिलाभ हुआ, इसके पूर्व वे बोधिसत्व थे। लोक–कल्याण निमित्त ज्ञान–लाभ हेतु अभ्यासरत व्यक्ति को 'बोधिसत्व' कहते हैं। बुद्ध का मतलब होता है प्राणी मात्र के दुःख निवारण एवं कल्याण के लिए सम्यक ज्ञान प्राप्त व्यक्ति; बुद्ध का मतलब होता है बुद्धि के कसौटी पर जाँच–परखकर कोई मान्यता या परंपरा का अवलंबन करना। अर्थात बुद्ध माने रूढ़िवादी परंपरा की नींव पर खड़े विषमतावादी महल को ध्वस्त कर समतावादी समाज की अट्टालिका का निर्माण करना। इन 27 पूर्वबुद्धों का नाम निम्न प्रकार है– 1. महावीर तण्हकर 2. मेधकर 3. शरणं कर 4. दीपंकर 5. कोडिण्य 6. मंगल 7. सुमन 8. रेवत 9. सूर्यदर्शी 10. धमदर्शी 11. सिद्धार्थ 12. तिष्य 13. सम्बुद्ध 14. विपश्यी 15. शिखी 16. विश्वभ 17. क्रकुच्छन्द 18. कोणागमन 19. काश्यप 20. शोभित 21. अनामदर्शी 22. पद्य 23. नारद 24. पद्मोत्तर 25. सुमेध 26. सुजात 27. प्रियदर्शी। डॉ. बाबासाहब भीमराव अंबेडकर 'नवबुद्ध' के श्रेणी में आते हैं। नवबुद्ध के रूप में बाबासाहब अंबेडकर की वंदना निम्न प्रकार है –

सकलं विजं विधुरंजानं देवरूप सुजिब्हं।
निमल चक्खु गभिर धोस गौर वण्णं सुकायं।।
अभय चितं निभय कामं सुरत धम्मं सुचेम।
विरत रज्जं सुजननेत भीमरावं सरामि।
भीवरावं सरामि, भीम राव सरामि।।

अर्थ–''सर्वोत्तम विद्यासंपन्न, विलक्षण बुद्धिसंपन्न, दिव्यरूप संपन्न प्रभावकारी वाणी संपन्न, गौवर्ण, सुंदर शरीर संपन्न करूणा–मैत्री संपन्न, अभय मन, निर्भय होकर धम्मकार्य परिपूर्ण करने वाले, जनसेवा हेतु राजकीय पदत्याग करने वाले, श्रेष्ठ नेतृत्व वाले, ऐसे सर्वगुण संपन्न बोधिसत्व भीमराव जी का मैं स्मरण करता हूँ।''

ध्रवुधर्मधुरन्धरं शीलराशिं शुभननम्।
वयं वन्दामहे वन्द्यं बुद्धमम्बेडनाकम्।।

अर्थ–''जो ध्रुव (अटल) धर्म को धारण करने वाले हैं, शुभ मुख वाले हैं, वन्दना करने योग्य हैं, ऐसे बुद्धरूपी बाबासाहब भीमराव अंबेडकर को हम प्रणाम करते हैं।''

इस प्रकार भगवान बुद्ध के पहले 27 पूर्वबुद्ध और उनके बाद एक नवबुद्ध डॉ. बाबासाहब के रूप में हुए थे। भगवान बुद्ध के पश्चात् बाबासाहब ही ऐसे महानायक सम्यक संबोधित हुए थे जिन्होंने बुद्धिज्म को पुनर्जीवित किया और बौद्ध धर्म की नए ढंग से व्याख्या प्रस्तुत की। बाबासाहब ने ही बौद्ध धर्म के तत्वों को क्रांतिकारी धर्म के रूप में प्रस्तुत किया। गौतम बुद्ध ने बुद्धिवादी सिद्धांत पर आधारित बौद्ध भिक्षुसंघ की स्थापना कर उसे मानवता मात्र के लिए संघ में प्रवेश हेतु अनुमोदित किया, जबकि बाबासाहब और इस्लाम के आक्रमण के कारण निस्तेज होते बौद्ध धर्म में नई रोशनी दी; सम्राट अशोक ने इसे विश्वधर्म बनाया।

साभार – अशोक विजयादशमी का बाह्मणीकरण
पृष्ठ सं. 15 से 19
डॉ. विजय कुमार त्रिशरण

वर्ण तीन हैं या चार?

आदिकाल से ही आर्य समुदाय में वर्ण व्यवस्था मौजूद रही है। जिसे सभी हिंदू तथा पश्चिमी विद्वान स्वीकार करते हैं यदि पिछले अध्याय में वर्णित इस आधार को कि शूद्र क्षत्रिय थे, स्वीकार किया जाए तो यह सिद्धांत गलत है। यदि ऐसा है तो कभी केवल तीन ही वर्ण थे, अर्थात ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य। इससे एक समस्या का समाधान हो तो दूसरी समस्या उत्पन्न हो जाती है। पता नहीं इसका महत्व कोई समझेगा या नहीं। यह कहा जाता है कि जब तक यह सिद्ध न हो जाए कि आदि काल में केवल तीन वर्ण है कि आर्यों में आदिकाल में केवल तीन ही वर्ण थे।

काश मुझे कोई सिद्धांत मिल जाता जिससे मैं यह समस्या हल करने का वायदा निभा पाता किंतु इससे एक और समस्या हो जाती है। सौभाग्य की बात है इस बारे में मुझे पुख्ता सबूत मिले हैं कि शुरू में आर्यों के केवल तीन ही वर्ण थे।

पहला प्रमाण ऋग्वेद का है। मैं उसी का विश्वास करता हूं। कुछ विद्वानों का मत है कि ऋग्वेद के काल में वर्ण–व्यवस्था नहीं थी। उनका मत है कि ऋग्वेद में पुरूष सूक्त बहुत समय बाद का क्षेपक है।

यदि यह मान भी लिया जाए कि पुरूष सूक्त बाद का क्षेपक है तब भी यह नहीं माना जा सकता कि ऋग्वेद के समय में वर्ण व्यवस्था नहीं थी। ऋग्वेद के साथ इस व्यवस्था का विरोधामास है क्योंकि पुरूष सूक्त के अतिरिक्त कई स्थानों में ऋग्वेद में ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य का वर्णन एक साथ आया है, परंतु ''शूद्र'' का नाम इस अर्थ में कहीं नहीं आया कि एक वर्ण का नाम है। यदि किसी विशेष वर्ण का नाम ''शूद्र'' होता, तो ऋग्वेद में उसका जिक्र अवश्य आता। इससे यही परिणाम निकालता है कि ''शूद्र'' नाम का कोई चौथा वर्ण नहीं था।

दूसरा प्रथम तैत्तिरीय और शतपथ ब्राह्मण का है। दोनों ब्राह्मणों में केवल तीन वर्णों का उल्लेख है। शूद्रों के पृथक वर्ण का कोई जिक्र नहीं है।

शतपथ ब्राह्मण (2.1.4.11) में कहा है–भूः कह कर प्रजापति ने पृथ्वी को बनाया, भुवः कह कर वायु और स्वः से आकाश को बनाया। ये तीनों शब्द और ब्राह्मांड एक साथ ही बने। तीनों के साथ अग्नि को बनाया। भूः उच्चरण करके ब्राह्मण को बनाया, भुवः कह कर क्षत्रिय को और स्वः से वैश्य को बनाया। सबके साथ अग्नि की बनाया, भूः कह कर प्रजापति ने स्वयं को बनाया, भुवः से प्राणियों को और स्वः से पशुओं को बनाया। दुनिया प्रजापति, प्राणि और पशुओं की है और अग्नि तीनों की है।

तैत्तिरीय ब्राह्मण (3.12.9.2) में लिखा हैः–

''सारी सृष्टि ब्रह्मा से पैदा हुई। ऋग्वेद से वैश्व बने, ऋग्वेद से क्षत्रिय और सामवेद से ब्राह्मण पैदा हुए। ऐसा प्राचीन समय में कहा गया है।''

ऋग्वेद और दोनों ब्राह्मण ग्रंथों से बढ़ कर क्या प्रमाण हो सकता है। जिनकी मान्यता वेदवत है दोनों श्रुति हैं। दोनों में केवल तीन वर्णों का उल्लेख है शूद्र का पृथक वर्ण होना अथवा चतुर्थ वर्ण होने का कोई कथन नहीं है। मेरे कथन पर इससे बढ़ कर कोई प्रमाण नहीं हो सकता कि मूलतः तीन ही वर्ण थे।

II

मेरा ऐसा प्रमाण है। लेकिन इसके प्रतिकूल पुरूष सूक्त है जिसमें कहा गया है कि चार वर्णों का आदिकाल से अस्तित्व है। किसे सही मानें? मीमंसा के सिद्धांतों के अनुसार तो पुरूष सूक्त के चार वर्ण और उक्त ब्राह्मण ग्रंथों के अनुसार तीन वर्ण के सिद्धांत दोनों को मानना पड़ेगा। परंतु यह अनुचित बात है। वर्ण तीन भी है और चार भी, ऐसा कहने का कोई अर्थ नहीं है। अतएव इतिहासकारों के मत को मानना पड़ेगा कि कौन पहले बना? क्या पुरूष सूक्त असली ऋग्वेद के बाद बना? इसके लिए पुरूष सूक्त तथा बाकी ऋग्वेद की भाषा का मिलान करना पड़ेगा। सभी विद्वानों का मत है कि पुरूष सूक्त बाद का बना है।

कोलब्रुक का कथन है :– ''यह मंत्र अर्थात पुरूष सूक्त के छंद तथा शैली और भाषा शेष, ऋग्वेद की प्रार्थनाओं से सर्वथा भिन्न है। यह अधिक अर्वाचीन प्रतीत होता है। यह उस समय बना होगा जब कि संस्कृत भाषा और व्याकरण काफी परिष्कृत हो गई। इसकी भाषा से यही पता चलता है कि पहले अधिकांश मंत्र सहज लोक भाषा में लिखे गए और वेदों का वर्तमान संकलन उस समय का है जब छंदों का प्रयोग होने लगा और पुराणों तथा काव्यों में गेय मंत्र का श्लोक लिखे जाने लगे।''

प्रो. मेक्समूलर का मत है :– ''इसमें संदेह की गुंजाइश नहीं है। उदाहरणार्थ नौवें मंडल का 90वां मंत्र लक्षण और शैली की दृष्टि से अर्वाचीन है। इसमें यज्ञ के कर्मकांड की संपूर्ण झलक है, इसमें तकनीकी दार्शनिक शब्दावलि है, इसमें तीन ऋतुओं का क्रम इस प्रकार है वसंत, ग्रीष्म और शरद। ऋग्वेद का मात्र यही प्रसंग है जहां चार वर्ण गिनाए गए हैं। इस संकलन के अर्वाचीन होने की सशक्त संभावनाएं हैं। उदाहरणार्थ ग्रीष्म का ऋग्वेद में अन्यत्र उल्लेख नहीं है। प्राचीन वैदिक मंत्रों में वसंत शब्द भी नहीं मिलता। ऋग्वेद (10.16.1.4.) में इसकी एक बार आवृति है, जहां तीन ऋतुएं शरद, हेमंत और वसंत ही कही गई हैं।''

प्रोफेसर वेबर का कहना है :– ''पुरूष सूक्त ऋग्वेद के मंत्रों में सबसे बाद का जुड़ा प्रतीत होता है। यह उसकी सामग्री से स्पष्ट है। फिर साम संहिता में इससे कोई मंत्र नहीं लिया गया। यह भी एक प्रमाण है। नवगेय सिद्धांत में यद्यपि निश्चयात्मक रूप से नहीं, फिर भी उसने पहली अर्चिका के सातवें प्रपाथक में पहले पांच मंत्र ही लिए हैं। यह एक विशिष्टता है।''

III

यह एक तर्क है जो हमें यह निर्णय लेने में मदद करता है कि पुरूष सूक्त बाद में बना या पहले। इसके लिए यह देखना जरूरी होगा कि वेदों की कितनी संहिताओं ने पुरूष सूक्त को अपनाया है। अध्ययन करने पर वेद और संहिताओं की स्थिति इस प्रकार है :–

इसके सामवेद में केवल 5 मंत्र हैं। श्वेत यजुर्वेद और यजुर्वेद की वाजसनेयी संहिता में पुरूष सूक्त के मंत्र हैं परंतु दोनों में बहुत अंतर है। ऋग्वेद में पुरूष सूक्त के केवल 16 मंत्र है परंतु वाजसनेयी संहिता में 22 मंत्र हैं। कृष्ण यजुर्वेद की तीन संहिताएं तैत्तिरीय, कठ और मैत्रायनी में से किसी में भी पुरूष सूक्त नहीं है। केवल अथर्ववेद में ही पुरूष सूक्त ज्यों का त्यों शामिल किया गया है।

भिन्न–भिन्न वेदों में पुरूष सूक्त के मंत्रों की संख्या, क्रम और पाठ तीनों क्रम से नहीं है, वाजसनेयी संहिता में अंतिम 6 मंत्र अधिक हैं। ऋग्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद में नहीं पाए जाते। इसी प्रकार अथर्ववेद के सूक्त का 16वां मंत्र न ऋग्वेद में पाया जाता है, न यजुर्वेद में। पन्द्रह मंत्र भी तीनों वेदों में समान नहीं है और न ही उनका क्रम एक समान है। यह भिन्नता निम्नलिखित सूची से प्रकट होगी। इस सूची में इस चिन्ह (X) का तात्पर्य है, नहीं पाए जाते और चिन्ह (+) का अर्थ है, पाठांतर है।

यजुर्वेद	ऋग्वेद	सामवेद	सामवेद
1	1	3	1
2	2	5	4
3	3	6	3
4	4	4	2
5	5	7	9
6	8	X	10
7	9	X	11
8	10	X	14
9	7	X	13
10	11	X	12
11	12	X	5
12	13	X	6
13	14	X	7
14	6	X	8
15	15	X	15
16+	16	X	16+
17	X	X	X
18	X	X	X
19	X	X	X
20	X	X	X
21	X	X	X
22	X	X	X

स्थिति यह है कि यदि पुरूष सूक्त प्राचीन होता तो अन्य वेदों में इस तरह की स्वतंत्रता के साथ उसकी काट छांट का अवसर न होता।

विभिन्न वेदों में पुरूष सूक्त का स्थान भी बहुत महत्व रखता है। इसके अतिरिक्त पुरूष सूक्त ऋग्वेद के मिश्रित भाग में पाया जाता है। यदि यह पुराना होता तो क्या उसके साथ छेड़छाड़ की जा सकती थी? क्या इसमें ऐसी कांट–छांट की जा सकती थी। विभिन्न वेदों में पुरूष सूक्त का स्थान अलग–अलग है। ऋग्वेद में यह विविध रूप में दिया गया है। अथर्ववेद में यह पूरक परिशिष्ट है। इसमें भेद क्यों है?

अस्तु इस गड़बड़ का परिणाम यह निकलता है किः–

1. चूंकि पुरूष सूक्त कृष्ण यजुर्वेद की तैत्तिरीय संहिता, कठ और मंत्रायनी संहिता में नहीं पाया जाता, इससे यह सिद्ध है कि उन संहिताओं के बाद यह सूक्त ऋग्वेद में जोड़ा गया।

सेवा में,

नाम .....

पता .....

.....

.....

2. चूंकि यह ऋग्वेद तथा यजुर्वेद के परिशिष्ठ भाग में डाला गया है, इससे यह सिद्ध होता है कि यह इसके बाद बना।
3. चूंकि और वेदों के सूक्तों में मनमानी काट छांट और पाठांतर किया गया है, इससे सिद्ध होता है कि यह प्राचीन मंत्र नहीं था और न ही इसकी उतनी प्रतिष्ठा थी। इन बातों से साझा साक्ष्य मिलते हैं जो प्रो. मैक्समूलर और अन्य विद्वानों के पक्ष में जाते हैं कि पुरूष सूक्त क्षेपक है।

IV

पुरूष सूक्त के मंत्रों की रचना शैली में भी अंतर है। सब मंत्र तो एक सिलसिले में है परंतु मंत्र 11 और 12 प्रश्नोत्तर के रूप में हैं। ये दो मंत्र वर्णोत्पत्ति को बताते हैं। एक व्याख्यात्मक क्रम में यह व्यवधान क्यों आया। ऐसा प्रतीत होता है कि वे दो मंत्र बाद में सूक्त के बीच जोड़ दिए गए। अतएव केवल पुरूष सूक्त बाद में ही नहीं जोड़ा गया। उसमें समय–समय पर और मंत्र भी जुड़ते रहे। कुछ विद्वानों का तो यह भी मत है कि पुरूष सूक्त तो क्षेपक है ही उसके कुछ मंत्र और भी बाद में इसमें जोड़े गए।

कुछ लोगों का तो यहां तक कहना है कि पुरूष सूक्त प्रपंच है, जाली है और ब्राह्मणों ने अपनी श्रेष्ठता को बघारने के लिए इसमें जोड़े हैं। पुरोहितों ने कई जालसाजिया की हैं।

ऐसे प्रपंच ब्राह्मणों ने बहुधा रचे हैं। प्रोफेसर मैक्समूलर का कथन है कि ऋग्वेद में ''अग्रे'' का ''अग्ने'' बना दिया गया, जिससे विधवाओं के जलाने का अर्थ निकलने लगा। ईस्ट इंडिया कंपनी के समय में एक अभियोग में वादी के समर्थन में एक स्मृति ही रच दी गई। इसलिए कोई विस्मय नहीं कि 11वें और 12वें मंत्र रच कर जोड़ दिए गए और बाद में चौथा वर्ण टपक पड़ा और वेद में चातुर्वर्ण्य की प्रतिस्थापना हो गई।

V

क्या पुरूष सूक्त ब्राह्मण ग्रंथों के पहले बने? यदि पुरूष सूक्त ऋग्वेद का भाग है तो यह ब्राह्मणों से पहले बना होना चाहिए। यदि ऋग्वेद ब्राह्मण ग्रंथों से पहला है तो पुरूष सूक्त भी पहले का ही होना चाहिए। अतएव इसका भी अलग से अनुसंधान उचित है।

प्रो. मैक्समूलर ने वैदिक साहित्य का क्रम इस प्रकार बताया है :–

पहले वेद फिर ब्राह्मण और सूत्र बने। यदि यह कथन सत्य है तो पुरूष सूक्त ब्राह्मणों से पहले बना। प्रश्न यह उठता है कि क्या प्रो. मैक्समूलर के सिद्धांत को अक्षरशः मान लिया जाए? यदि माना जाए तो इससे दो परिणाम निकलते हैं –

1. ऋग्वेद के समय में चार वर्ण थे, परंतु शतपथ ब्राह्मण के समय केवल तीन ही वर्ण रह गए, या
2. यह कि शतपथ ब्राह्मण में पूरी व्याख्या नहीं है।

पहला परिणाम तो प्रत्यक्षतः असंभव है। इस तरह पहला प्रश्न व्यर्थ है। दूसरा भी इसलिए मानने योग्य नहीं है, क्योंकि दोनों ब्राह्मणों में पुरूष सूक्त के विषय में मतभेद हैं। वर्ण व्यवस्था पूर्ण रूप से वर्णित है। अतएव मैक्समूलर का कथन मानें तो चारों वैदिक संहिताओं के बनने के बाद ब्राह्मण बने, सर्वथा निराधार है और मानने योग्य नहीं है। इसके विपरीत बेलवलकर और रानाडे का कहना है कि कुछ अंश वेदों के पहले और कुछ बाद में बने। अस्तु ब्राह्मण ग्रंथों का कुछ अंश भी वेदों की समाप्ति के पहले बनना असंभव भी नहीं है। यदि यह ठीक है तो ऐसा प्रतीत होता है कि ब्राह्मण ग्रंथ शतपथ और तैत्तिरीय ब्राह्मण जिनमें केवल तीन वर्णों का वर्णन है, पुरूष सूक्त से पहले बने। पुरूष सूक्त के विश्लेषण से क्या निष्कर्ष निकलता है? पुरूष सूक्त ऋग्वेद में एक क्षेपक है। इसलिए यह कोई तर्क नहीं कि आर्य समुदाय में शुरू में ही चार वर्ण थे।

उपरोक्त तर्कों के आधार पर मेरे इस सिद्धांत में शूद्रों की उत्पत्ति पर कोई समस्या नहीं है, जैसा कि अध्याय के आरंभ में कहा गया है। यदि कोई समस्या आती भी है तो इसका कारण यह समझ लेना है कि पुरूष सूक्त मान्य है। यह बता दिया गया है कि यह कल्पना निराधार है। इसलिए मुझे ऐसा समझने में कोई कठिनाई नहीं है कि आर्यों के केवल तीन वर्ण थे और शूद्र दूसरे वर्ण–क्षत्रिय से सम्बद्ध थे।

साभार – बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर
सम्पूर्ण वाङ्मय खण्ड–13 पृष्ठ सं. 107 से 112
डॉ. बी. आर. अम्बेडकर